॥ श्रीहरिः ॥

मेरे प्रियतम

राधाबाबा

Mere Priyatam

by

Radha Baba

प्रकाशक

गीतावाटिका प्रकाशन

(पद-रत्नाकर सेवा शोध संस्थानका एक प्रकल्प)

पो०—गीतावाटिका, गोरखपुर-२७३००६

फोन : (०५५१)२२८४७४२, २२८२१८२

e-mail : rasendu@hotmail.com

प्रथम संस्करण—श्रीराधाष्टमी महोत्सव सं० २०६४ वि०

मूल्य : तीस रुपये (३०/-)

नम्र निवेदन

भारतीय भक्ति-साधनामें मधुर रसकी युगलमूर्ति श्रीराधाकृष्णका तत्त्व-चिन्तन एवं भाव विश्लेषण अनादि कालसे होता आ रहा है। इस रसामृत सिन्धुमें अवगाहन करनेवाले महर्षि वेद-व्यास, देवर्षि नारद और शुकदेवजी जैसे सिद्ध मुनियोंसे लेकर महाकवि जयदेव, चैतन्य महाप्रभु, मीराबाई एवं सूरदासजी जैसे दिव्य संत पुराकालमें हुए उसी प्रकार आधुनिक युगमें इस प्रेमधाराके प्रवाहको नई स्फूर्ति प्रदान करनेवाले सन्तोंमें रससिद्ध सन्त भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका स्थान अग्रगण्य है। वे 'भक्ति भक्त भगवन्त गुरु चतुर्नाम वपु एक' के साक्षात् विग्रह थे।

श्रीभाईजीकी उच्चतम पारमार्थिक स्थितिका अनुमान इसी बातसे किया जा सकता है कि सत्ययुगके ऋषि देवर्षि नारद एवं महर्षि अंगिराके अतिरिक्त सनकादि मुनियोंके दिव्य दर्शन उन्हें हुए। श्रीभाईजी इतने आत्म संगोपन स्वभावके थे कि उनकी वास्तविक स्थितिका ज्ञान कुछ एक विरले महानुभावोंको ही था। उनमेंसे एक थे श्रीराधाबाबा।

पूज्य श्रीराधाबाबा उद्‌भट विद्वान् थे। वेदान्तनिष्ठ संन्यासी होते हुए उनका पूज्य श्रीभाईजीके प्रति पूर्ण समर्पणका भाव था। श्रीभाईजीके संगने उनकी जीवनधारा बदल दी। उन्हें श्रीभाईजीमें कभी श्रीराधारानीके, कभी श्रीकृष्णके और कभी प्रिया-प्रियतमके दिव्य दर्शन होते थे। उन्होंने श्रीभाईजीके साथ रहनेका केवल जीवनव्यापीव्रत ही नहीं लिया बल्कि वे श्रीभाईजीकी चितास्थलीपर आजीवन रहे।

एक जगह श्रीराधाबाबा लिखते हैं—'सत्संगमें आपकी बात मुझे वेदवाक्यसे भी ऊँचे स्तरके वाक्यके रूपमें असर करती है। प्रवचन सुनते-सुनते मैं बैठा उन भावोंमें बह जाता हूँ। व्रजप्रेमकी चर्चा सुनकर प्रेमकी इतनी ऊँची सीमामें पहुँचता हूँ कि उस समय कुछ क्षणोंके लिये मालूम होता है कि सारी कलुषता दूर होकर त्यागकी चरम सीमापर श्रीकृष्णने मुझे पहुँचा दिया है। फिर धीरे-धीरे भाव कम हो जाता है। उस दिन यह बात सुनकर बहुत गहरा असर हुआ। मैं यदि श्रीकृष्ण चर्चाका दान किसीको दूँ तो वह अनन्तगुना होकर मेरे पास आ जायगा। मैं यदि भाईजीके प्रति श्रद्धामयी चर्चाका दान किसीको दूँ, तो वह अनन्तगुना होकर मेरे पास आ जायगा। आह! कितना ऊँचा व्यावहारिक जीवन हो जायगा।'

श्रीभाईजीकी पारमार्थिक स्थितिको जितना श्रीराधाबाबाने अनुभव किया उसका कतिपय अंश (बाबाने स्वीकार किया है कि मेरा जो अनुभव है वह पूरा का पूरा शब्दोंमें व्यक्त ही नहीं किया जा सकता है) योगमायाकी लीला महाशक्तिकी कृपासे जगत्के

कल्याण हेतु श्रीराधाबाबाकी लेखनी एवं वाणीसे समय-समयपर प्रस्फुटित होती रही। यह सामग्री यत्र-तत्र बिखरी हुई है। इसे एक जगह प्रकाशित करनेका उद्देश्य यही है कि बाबाको श्रीभाईजीकी महिमाका जो ज्ञान था वह सर्वसाधारणको सुलभ हो जाय। श्रीराधा बाबाकी हस्तलिखित सामग्री यथास्थान देनेका प्रयास किया गया है। सभी सामग्री उनके हस्ताक्षरोंमें इसलिये नहीं दी जा सकी कि वे पृष्ठ अत्यन्त जीर्ण अवस्थामें हैं। यदि कोई त्रुटि रह गयी हो, उसके लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं और ध्यान दिलानेपर सुधारनेकी चेष्टा की जायेगी।

आशा है कि श्रीराधाबाबाके ये वचनामृत अनन्तकालतक भक्तजनोंके लिये प्रेरणाप्रद रहेंगे और भूले-भटकोंको निरन्तर सत्पथ प्रदर्शित करते रहेंगे।

प्रकाशक

विषय-सूची

प्राक्कथन

पू० भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे प्रथम भेंट

श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दका से निर्धारित कार्यक्रमानुसार बाबा् दो रात और एक दिन की रेल यात्रा करके गोरखपुर रेलवे स्टेशन पर उतरे। यात्रा में भिक्षा का तो प्रश्न ही नहीं था। अत: वे निराहार ही थे। वे भिक्षा की याचना तो करते नहीं थे, प्रारब्धानुसार स्वत: ही कोई आग्रह करता तो भिक्षा किया करते थे। आहार के अभाव में उनके शरीरमें पर्याप्त शिथिलता थी। स्टेशनसे बाहर आकर बाबा ने गीताप्रेसका मार्ग पूछा और स्टेशन से दूरी भी पूछी। लगभग तीन मीलकी दूरीकी बात सुनकर बाबा एक बार तो स्तब्ध रह गये। वे अर्थका स्पर्श नहीं करते थे और न ही किसी जानदार सवारी पर चढ़ते ही थे। अशक्तता की अनुभूति पर्याप्त थी, परन्तु दूसरा कोई उपाय भी नहीं था। वे थोड़ी दूर चलते फिर थककर बैठ जाते। इस प्रकार नौ-दस बार ठहरते, बैठते-उठते हुए तीन मीलकी दूरी उन्होंने अढ़ाई-तीन घंटे में तय की। पं० श्रीलादूरामजी शर्मा उन्हें गीताप्रेसके द्वारपर मिले। उनसे श्रीसेठजी गोयन्दकाजीके बारे में पूछने पर पता चला कि वे अभी तक आये हैं नहीं, संभव है एक दो दिवसमें आवें। उन्होंने शर्माजीसे हनुमानप्रसादजी पोद्दारके बारेमें पूछ लिया। उनकी स्मृति उन्हें सहसा ही हो गयी थी। श्रीशर्माजीने कहा—'वे हैं तो सही, परन्तु वे रहते हैं गीतावाटिकामें, जो यहाँसे लगभग तीन मील दूर है।'

अभी तक तो बाबा खड़े-खड़े बात कर रहे थे, परन्तु पुन: तीन मीलकी बात सुनते ही वे हताश होकर वहीं भूमि पर बैठ गये। शरीरकी दुर्बलता एवं उपवासजनित अशक्तताके कारण तीन मील पुन: चलना उन्हें असंभव लग रहा था। परन्तु भगवदिच्छासे श्रीलादूरामजीके मनमें सद्भावका उदय हो गया। उन्होंने बाबासे कहा कि मैं आपको इक्का कर देता हूँ, उसपर चढ़कर आप गीतावाटिका चले जाइये। नियमत: जानदार सवारी पर बाबा बैठते नहीं थे, परन्तु यहाँ तो सर्वथा ही विवशताकी स्थिति थी। इक्केका भाड़ा श्रीशर्माजीने दे दिया था। इक्का गीतावाटिका आया। प्रवेश द्वार पर बाबा उतर पड़े।

उस समय गीतावाटिका लघु वनस्थल ही था। बिजलीका प्रकाश था नहीं। रातके समय मात्र लालटेनके प्रकाशसे काम चलाया जाता था। चारों ओर आम और अमरूदके बड़े-बड़े बाग एवं खेत थे। क्षेत्र इतना निर्जन था कि लोग दिनमें आते ही डरते थे। गीतावाटिका अपने आपमें एक ऋषि उपवन था। हरी-भरी लताओं और ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंके कारण उपवन बहुत ही सघन था। फूल चतुर्दिक असंख्य थे। फल भी मौसमके अनुसार सभी होते थे। इस ऋषि-उपवनमें इने-गिने कतिपय सहयोगियोंके साथ श्रीपोद्दारजी 'कल्याण' पत्रिकाका सम्पादन कार्य किया करते थे।

गीतावाटिकाके प्रवेशद्वार पर ही बाबाको श्रीदुलीचन्दजी दुजारी मिले। वाटिकाके अग्रभागमें एक भवन था, उसीमें श्रीपोद्दारजी सपरिवार रहते थे। इसी भवनमें सम्पादकीय विभागके लोग भी रहा करते थे। यही उनका कार्यालय भी था। उस भवनके बरामदेकी सीढ़ियोंमें बाबा बैठ गये।

इन दिनों यहाँ एक वर्षका अखण्ड साधक-सत्र चल रहा था। देशभरसे सैकड़ों साधक साधना एवं सत्संग करने यहाँ आये थे। वहाँ अखण्ड भगवन्नाम संकीर्तन भी चल रहा था, साथ ही श्रीशान्तनुबिहारी द्विवेदी (श्रीअखण्डानन्द सरस्वती) द्वारा श्रीमद्भागवत कथा भी चल रही थी।

जिस समय बाबा वहाँ पहुँचे पण्डालमें श्रीपोद्दारजी स्वयं एक अण्डी (कटिया रेशमका वस्त्र) ओढे हुए हाथसे ताली बजा-बजाकर कीर्तन कर रहे थे। श्रीदुलीचन्दजीने श्रीपोद्दारजीको सूचना दी कि एक दुबले-पतले युवक सन्यासी बाहरसे आये हैं और आपको पूछ रहे हैं। श्रीदुलीचन्दजीसे सूचना पाते ही श्रीपोद्दार महाराज संकीर्तन पण्डालसे चलकर बाबाके पास आये और दोनों हाथोंसे बाबाके दोनों चरणोंको छूकरके प्रणाम किया। ये बाबाके स्वयंके शब्द हैं कि 'पहली ही भेंटमें उन्होंने मुझमें रसराज श्रीकृष्णको प्रतिष्ठित कर दिया। रसस्वरूप श्रीकृष्ण और महाभाव स्वरूपा श्रीवृषभानुनन्दिनी वैसे तो एक ही हैं, परन्तु उन रसस्वरूप संतने पहली ही भेंटमें मुझे महाभावका दान कर दिया। इस दानकी प्रक्रिया भी अति विचित्र थी।'

'जगत्में दाताका हाथ और दाताका मस्तक सदा ऊँचा रहता है। पर इन रसस्वरूप श्रीपोद्दार महाराजने स्वयं झुककर दान दिया। मेरे चरणोंको छूकर दान दिया और अपने मस्तकको झुकाकर दान दिया। इसीलिये मैंने एक सोरठा

बनाया है—विभु-तत्वमें मेरी प्रतिष्ठा तो श्रीसेठजीने की, परन्तु मुझमें श्रीराधाकृष्णके रसतत्वकी प्रतिष्ठा श्रीपोद्दार महाराजने की।

'ब्रह्मरूप स्वस्थान जयदयाल विभु ने दिया।
महाभाव रसदान कृष्णरूप हनुमान ने।'

'जो कार्य श्रीसेठजीसे चौदह-पन्द्रह दिन तक शास्त्रार्थ करनेसे नहीं हुआ, वह एक क्षणके इस स्पर्शने कर दिया। साकारोपासनाकी तो बात ही क्या। वस्तुतः ऐसी बात तो अति साधारण स्तरकी ही होती। साकारोपासनाकी अन्तरंगतम हृदयवस्तु उस स्पर्शके द्वारा श्रीपोद्दारजी महाराजने मुझे प्रदान कर दी। न जाने कितनी-कितनी उपासना-साधनाके उपरान्त भी जो वस्तु प्राप्त नहीं होती, वह लव मात्रमें मुझे कैसे प्राप्त हो गयी, यह रहस्य बुद्धिगम्य है ही नहीं। यह सब अनुमानसे अति अतीत है। बस, इतना ही कह सकता हूँ कि साकारोपासनाकी हृदय वस्तु जो व्रजभाव है, वह श्रीपोद्दार महाराजके उस अद्भुत स्पर्शसे लव मात्रमें मेरे अन्तरमें सुस्थापित हो गया।'

'ब्राह्मी स्थितिकी मस्तीमें मैं चतुर्थाश्रमी संन्यासी न तो झुका और न ही मैंने हाथ पसारे, जब वस्तुके महत्वसे भी अपरिचित था तो याचना होती भी कैसे, अतः मनमें भी याचनाका भाव नहीं था, परन्तु ज्ञानोत्तर भावराज्यकी रसमयतामें सतत निमग्न श्रीपोद्दार महाराजको वस्तुका दान करते समय झुकनेके लिये सोचना भी नहीं पड़ा। सहज भावसे वे झुके और अति विनम्र होकर उन्होंने अपने जीवनकी निधि मुझे सौंप दी। वस्तुतः रसामृतके दानकी यह प्रक्रिया ही अति अद्भुत है। गागर आयी अवश्य सागरके पास, परन्तु गागर झुकी नहीं, सागर पूर्णतः झुक गया। रसामृतका पान करानेके लिये झुक पड़ा सागर। सागर बह पड़ा और रससे सिक्त हो उठा पात्र।'

बाबाकी दृष्टि पोद्दार महाराज पर तभीसे लग गयी थी जब वे प्रणाम कर रहे थे। प्रणाम करके ज्यों ही उन्होंने अपना मस्तक उठाया उनकी दृष्टि बाबाकी दृष्टिसे एक हो गयी। बाबाको श्रीपोद्दार महाराज एकटक देखने लगे। तीन-चार मिनटका समय कम नहीं होता।

चार-पाँच मिनट पश्चात् जब पोद्दार महाराज कुछ प्रकृतिस्थ हुए तो उन्होंने बाबासे भिक्षाके बारेमें पूछा। पूछनेपर बाबा मन्द-मन्द मुस्करा दिये। श्रीपोद्दार महाराजने अनुमान लगा लिया कि बाबाको निराहार रहना पड़ा है। उन्होंने तत्काल उनके विश्राम और भिक्षाकी व्यवस्था की।

उस दिन एकादशी थी अत: पोद्दार महाराज थालमें व्रतोचित फलाहारी वस्तुएँ लेकर बाबाके सम्मुख आये। बाबाने कहा—'मैं पहले स्नान करना चाहता हूँ।'

तत्काल स्नानकी व्यवस्था हुई। भिक्षाके समय पत्तल परोसनेका कार्य स्वयं पोद्दार महाराजने ही किया। इसी प्रकार कुटियामें बाबाके लिये पुआलका गद्दा भी पोद्दारजीने स्वयं ही बिछाया। बाबा स्वयं देख रहे थे कि श्रीपोद्दार महाराजमें संत-सेवाका कैसा भाव और चाव है। अतिथि-सत्कारकी इस क्रियाने उन्हें विस्मयसे भर दिया था। वे सोच रहे थे कि क्या ऐसे सेवा-भावी शीलसम्पन्न मानव इस भूतलमें आज भी हैं?

सब आवश्यक कार्योंसे जब बाबा निवृत्त हो गये तो उनकी सुस्थिरतासे पू० श्रीपोद्दार महाराजसे वार्ता हुई। बाबाने संक्षेपमें बतलाया किस प्रकार राँचीमें श्रीसेठजीसे श्रीमद्भगवद्गीताकी टीका लिखनेकी बात उठी और फिर गोरखपुर आनेका कार्यक्रम बना। सारे विवरणको सुनकर पू० श्रीपोद्दार महाराजने कहा—'स्वामीजी! मुझे तो आज ही वाराणसी जाना पड़ रहा है। वहाँ एक स्वजन मरणासन्न स्थितिमें हैं। वाराणसी जाना आवश्यक है। तीन-चार दिनमें मैं अवश्य लौट आऊँगा। तबतक आप यहीं विराजित रहें। आपको कुछ भी कष्ट नहीं होगा। मेरे व्यक्ति आपकी भली प्रकार सँभाल कर लेंगे।

बाबाने उत्तर दिया—'आप मेरी ओरसे निश्चिन्त हो जायें। आप चिन्ता-रहित होकर वाराणसी यात्रा करें। मैं यहीं पर रहूँगा।'

श्रीपोद्दार महाराज उसी रात्रिमें वाराणसी चले गये। बाबाने रात्रिमें गहरी निद्रा ली। ट्रेनकी लम्बी यात्रामें वे ठीक प्रकारसे सो नहीं पाये थे। श्रीपोद्दार महाराज दो-तीन दिवसमें ही लौटकर आनेवाले थे, परंतु वे संयोगवश लौटकर आये प्रतिपदा-तिथिके दिन। तबतक श्रीपोद्दार महाराजके निर्देशानुसार उनके परिकर बाबाकी यथोचित सेवा करते रहे।

पूज्य बाबाकी लेखनीसे पू० श्रीभाईजीके सम्बन्धमें

पूज्य बाबा अपने मौनके समय (सन् १९४१-४२) में कुछ अनन्य श्रद्धालुओंके समक्ष श्रीभाईजीके सम्बन्धमें विशेष बातें लिखकर दी थीं। अपने और श्रीभाईजीके जीवनकालमें इन बातोंको प्रकाशमें उन्होंने निषेध किया था। वही सामग्री यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

(१)

(२)

रतनगढ़ सं० १९९८ मार्गशीर्ष शुक्ल २ श्रीभाईजीके घरपर रात्रिके १० बजे श्रीचक्रधरजी महाराजने श्रीदुजारीजीके प्रश्नके उत्तरमें निम्नलिखित बातें लिखीं

उपस्थिति—(१) श्रीचक्रधरजी (२) शुकदेवजी, (३) मदनलालजी चूड़ीवाले, (४) शिवकृष्णजी डागा, (५) गोवर्धनजी, (६) केदारनाथजी कानोडिया, (७) शिवभगवानजी फोगला (८) गम्भीरचन्दजी दुजारी।

स्वामीजीका प्रश्न—क्या लिखें?

दुजारीजीने पूछा—महापुरुषोंमें श्रद्धाप्रेम कैसे हो?

स्वामीजीने कहा—(१) जिसे महापुरुष माने, उसके सामने कभी-कभी एकान्तमें बैठकर अपनी दीनता सुना देनी चाहिये। बस, (२) इस रूपमें ही कह दें कि मैं आपके सामने दीन बनना भी नहीं चाहता, इससे बढ़कर नीचता क्या। (३) मतलब यह है कि कभी कभी उनके दिव्य अन्तःकरणमें अपनी स्मृति डाल दें, बस। (४) बिल्कुल एक ही बात है, चाहे भगवान्, चाहे महापुरुष किसी भी भावसे संग निस्तार करेगा ही। अवश्य ही बैर भावसे संग करनेवाला जैसे केवल भक्ति पाकर ही रह जाता है, प्रेमकी प्राप्ति अनुकूल सेवाके द्वारा ही होती

है। वैसे ही महापुरषका वस्तु, गुण निस्तार तो कर देता है पर भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके लिये उसके अनुकूल बननेकी चेष्टा करनी पड़ेगी।

मैं आज सोच रहा था कि आप (दुजारी) कुछ पूछियेगा अवश्य तब क्या कहूँगा। इसे पहलेसे सोच लूँ। बहुत देर सोचनेके बाद मेरे मनमें यही आया कि आपसे प्रार्थना करूँ कि आप सच्चे मनसे आशीर्वाद दीजिये कि भाईजीके चरणोंमें रत्तीभर भी प्रेम हो जाय। यदि प्रेम न भी हो तो कम-से-कम इतना तो अवश्य बना रहे कि कहीं भी रहूँ (शायद भाईजी रखें कि नहीं, क्या पता) पर मैं सदा भाईजीके चरणोंमें लोटते रहनेकी सच्ची लालसासे तरसता रहूँ। यह ठीक है कि भाईजी क्या करेंगे हमें रखेंगे कि छोड़ देंगे, इसका पता हमें नहीं है। अभी देखनेसे यह मालूम पड़ता है कि जबतक हम चाहेंगे, तबतक नहीं छोड़ेंगे, कभी छोड़ना न चाहेंगे, पर मैं सचमुच एक बहुत ही कमजोर दिलका आदमी हूँ। पता नहीं मेरे मनमें यह माया आ जाय कि कहीं जानेकी इच्छा होने लगे, इसी भयसे आप सब लोगोंसे आशीर्वाद सच्चे मनसे माँग रहा हूँ, कृत्रिम बात, विनोदकी बात नहीं कि जबतक भाईजी जीवित हैं, मैं जीवित हूँ, तबतक नित्यनिरन्तर उनके चरणोंमें मेरी प्रीति बढ़ती रहे, अभी तो भाईजी मुझे अधिक-से-अधिक सम्मानसे रखते हैं, पर ईश्वरकी साक्षी देकर यह बात कहता हूँ कि आप आशीर्वाद दें, बहुत ही अपमानित करके, ठुकरा करके भी यदि रहनेकी आज्ञा दे दें तो भी मैं रहूँ, वैसे अपमानित जीवनमें भी मेरे मनमें यह बात नहीं आये कि अब चलो छोड़ दो क्योंकि जीवनमें ऐसा संग, मुझे नहीं मिलेगा, नहीं मिलेगा, ऐसा बिलकुल ठीक दीखता है। मेरे जीवनका दारोमदार पता नहीं मैं नहीं जानता, श्रीराधाकृष्णके ऊपर हैं, या इनपर क्योंकि स्पष्ट रूपसे हमें कुछ भी नहीं बताते। पर आज जो कुछ भी वास्तविक शान्ति, वास्तविक आनन्द मुझे है, या बढ़ रहा है, इन सबका श्रीगणेश भाईजीके दर्शन होनेके बाद ही हुआ है। और यह भी ठीक-ठीक मेरे मनमें आती है कि यदि भाईजीका दर्शन हमें नहीं हुआ होता तो मेरा जीवन कितना नीरस होता। सच मानिये, मेरे हृदयमें भाईजीके प्रति जो भाव होना चाहिये, वह नहीं है, पर तरंग ऐसी उठती है कि मैं आपको समझा नहीं सकता।

इनके वास्तविक स्वरूपका बोध हमें पता नहीं है, बिल्कुल नहीं है, पर मैं जो सोचता हूँ एवं इन्हींकी कभी-कभी दया जब उमड़ पड़ती है, उस

समय जैसा अनुभव करता हूँ, वह बता नहीं सकता, इच्छा रखनेपर भी नहीं बता सकता केवल इतना ही कह सकता हूँ कि उस समय भाईजीके प्रति इतना अधिक आकर्षण होता है कि उसे वाणीके द्वारा समझा नहीं सकता। कुछ खास-खास बातें, जो इनके विषयमें एक खास विश्वस्त सूत्रसे पता लगा वे बातें याद आ जाती हैं और फिर सोचता हूँ कि पता नहीं वह दिन आयेगा कि नहीं। इनके चरणोंमें न्यौछावर हो जाऊँ। अभी आज ८ बजे करीब सोच रहा था, कि भाईजीसे पूछूँ कि भाईजी पता नहीं मैं पहले मरूँगा कि आप, पर यदि आपका शरीर पहले चला जाय तो हमें आप दर्शन देनेकी कृपा करेंगे क्या? क्योंकि अभी तो मेरेमें यह योग्यता नहीं आयी कि आप पर न्यौछावर हो जाऊँ और यह भी सोचता हूँ कि ऐसा मौका न जाने हमें किस भाग्यसे मिला है, फिर पीछे पछताना पड़ेगा।

बस इतना ही सुनकर अब हमें छुट्टी दे दीजिये।

एक महात्माने मुझे खास तौरसे इनके सम्बन्धमें कुछ बातें लिखी थी, पर उन्होंने यह स्पष्ट लिख दिया था कि ये बातें किसीपर भी प्रकट मत कीजियेगा। वह चिट्ठी पहले भाईजीके हाथमें ही आयी थी, और भाईजीने मुझे करीब १० दिन बाद दिया—उसमें बात कुछ ऐसी मामूली ढंगसे लिखी है, पर विचार करनेके बाद यह मैं कह सकता हूँ, पारमार्थिक इतनी ऊँची स्थितिकी कल्पना भी हमारे मनमें नहीं थी। उस पत्रको पढ़नेके बाद पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ। पर अब जैसे-जैसे दिन बीतने लगे हैं, उस बातका रहस्य धीरे-धीरे खुलता जा रहा है, और मैंने अबतक जितने शास्त्रोंमें संतोंके नाम सुने हैं, अबतक वैसी स्थिति किसीके जीवनमें भी मैं नहीं पढ़ पाया हूँ। उन महात्माने यह लिखा था कि आजसे ३०० वर्ष पूर्व या कुछ ज्यादा एक बहुत ऊँचे संतके जो श्रीकृष्ण लीलामें प्रवृष्ट हो चुके हैं, उनका मुझे दर्शन हुआ मैंने उनसे ही श्रीजयदयालजीकी एवं भाईजीकी पारमार्थिक स्थितिके विषयमें प्रश्न किया। उसका जो सार है, वह आपको लिख रहा हूँ।

परसाल गोस्वामीजीको मैंने इशारा जैसे आपको किया है, वैसे ही किया था, उसके दूसरे दिनसे ही गोस्वामीजीका ढंग बदला था, पर उन्हें भी वह बता नहीं सका। इनमें दो हेतु हैं। यद्यपि गोस्वामीजी बहुत ऊँची स्थितिके हों तो हमें सच मानिये पता नहीं, आप क्या हैं, वह क्या है, किसीके विषयमें भी मैं कुछ नहीं जानता पर यह मनमें जब आया कि महात्माजी हमपर नाराज

तो होंगे ही नहीं, यह बात दो चार आदमियोंको कह दूँ तो क्या हर्ज है पर फिर यह आया कि इसका वास्तविक लाभ ये लोग नहीं उठा सकेंगे। यह हमारे मनकी मलिनता ही हो सकती है। पर एक तो उनकी मनाही दूसरे मेरे मनमें यह शंका कि जबतक भजनके द्वारा अन्तःकरण पवित्र नहीं होता तबतक इस बातको कोई भी समझ नहीं सकता। तीसरे अभी भी डर लगता है कि भाईजी शायद इन बातोंको सुन पायेंगे तो मुझे धमकानेके लिये कोई कड़ा ढंग अख्तियार कर लेंगे क्योंकि उनके विचार मुझे ऐसे ही मालूम पड़ते हैं कि खास श्रीकृष्णकी प्रेरणा उन्हें है। जिससे वे अपने आपको बहुत ही मामूली दिखलाना चाहते हैं। अब यदि मैं उसके विरुद्ध कुछ करता हूँ तो फिर यह स्वाभाविक है कि वे सोचेंगे कि तो जाओ, मौज करो, अबतक छिपे-छिपे हमारे कृपासे ही तुम इतनी बात मेरे विषयमें जान पाये, पर अब इसका दुरुपयोग करने लगे तो जाओ। इतना ही नहीं यह भी भय मालूम हुआ कि यदि ये थोड़ा भी रुखा ढंग अख्तियार करेंगे तो फिर मेरी जो उन्नति है, हो रही है, वह सर्वथा बन्द हो जायेगी। ये बातें उनके मनमें हों ही नहीं, यह सर्वथा मेरी कल्पना हो सकती है पर मेरे मनमें यह भाव अभी भी काम करता है। और यह ठीक है उस बातको प्रकट करनेमें भाईजीको अत्यधिक संकोच होगा। मैं आपको इस बातकी इतनी ही फीस माँगता हूँ कि अब भाईजीके सामने इन बातोंको बिल्कुल न छेड़ें। और हमें यह डर लग रहा है कि भाईजी मुझे देख गये हैं, वे पता नहीं, क्या सोचेंगे? आप लोग हमारी अपेक्षा हमारी दृष्टिमें बहुत ऊँची श्रद्धा रखनेवाले हैं, ऐसा मुझे मालूम पड़ता है अवश्य ही प्रत्येकके भावके प्रकारमें अन्तर होता है।

(३)

(१९९८ मार्गशीर्ष शु०३ प्रातःकाल रास्तेमें श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीसे खड़े होकर नीचे लिखी बातें लिखी—)

.......क्योंकि जब मैं अधिकारी होऊँगा तो भाईजी तनिक भी कसर नहीं रखेंगे। अभी तो मेरे जीवनको उनकी दया या राधाकृष्णकी दया कहें ऐसे ढंगसे बढ़ा रही है कि किसीसे कुछ भी पूछनेकी जरूरत नहीं, जाननेकी जरूरत नहीं है। अलक्षित रूपसे, अन्य ढंगसे जब किसी प्रश्नको लेकर आगेका पथ बन्द दीखता है, तब अपने आप भाईजीके द्वारा कुछ ऐसी चेष्टा हो जाती है कि हमें प्रकाश मिल जाता है, फिर चलाकर क्या पूछें।

एक बात यह कहना रात भूल गया कि कहीं कोई यह न समझ ले कि मैं जयदयालजी एवं भाईजीमें छोटे-बड़ेकी आलोचना कर रहा हूँ। मैं तो श्रीजयदयालजीके चरणोंकी जूती बनकर भी उनका ऋण नहीं चुका सकता क्योंकि तीन साल अपने पास रखकर उन्होंने मुझे इस लायक बनाया कि मैं भाईजीके पास रहनेकी योग्यता प्राप्त कर सकूँ। पर मैं क्या करूँ, मेरा मन भाईजीके प्रति ही अधिक खिंचता है, इसलिये उनके (सेठजी) चरणोंमें मैं सब प्रकारसे न्यौछावर होनेकी चाहना करनेपर भी किसी खास विशेष पारमार्थिक कारणसे उनकी बात नहीं मान सकता। वे मुझे बहुत ही प्यारे हैं और मैं नि:संकोच कह सकता हूँ कि उनके चरणोंमें भक्ति रखनेवाले घनश्यामजी, रामसुखजी आदिके चरणोंकी रजको मैं हृदयसे आदर करता हूँ। पर, कुछ ऐसी बातें हैं जिसे मनुष्य मेरी समझमें भगवान्‌के समझानेसे भले समझे नहीं तो मेरी ताकत नहीं है कि मैं उसे समझा दूँ, कि क्यों मैं उनके प्रति इतना ऊँचा भाव रखकर भी, फिर उनकी कोई बात नहीं मानता। लोगोंमें ऐसी गलतफहमी होती है कि लोग श्रीजयदयालजी एवं भाईजीके बड़े छोटेकी कल्पना करके कई तरहकी बात सोचते हैं पर इस सम्बन्धमें कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें मनुष्य साधन करके ही समझ सकता है। अटकल पच्चू शास्त्रीय ज्ञानसे यहाँ कुछ भी नहीं होगा। यहाँ केवल भगवान्‌की कृपा ही समझा सकती है। इसलिये मैंने जो भी रातमें कहा है उसमें यह बात भी जोड़ लेनी चाहिये। मेरे लिये, यह ठीक है कि भाईजीसे अधिक बड़ा और कोई नहीं है क्योंकि इनके लिये मैंने श्रीजयदयालजीका जानबूझकर तिरस्कार किया है और उनकी कृपाको भी छोटा माना है।

मैं अहंकार नहीं मानता, सच मानिये, मेरी शक्ति बिल्कुल नहीं है कि मैं किसीको भी कुछ कह सकूँ पर मेरे मनकी अवस्था कुछ ऐसी है कि इच्छा रखनेपर भी कई बातें सामने आकर रुक जाती हैं। मेरे हृदयको आप देख सकें तो ठीक देखिये कि जो भी भाईजीके प्रति थोड़ी भी श्रद्धा रखता है वह मुझे अत्यधिक प्यारा है। मैं उससे कुछ भी छिपाना नहीं चाहता, पर जब बातें रुकती हैं, तब मनमें यह आता है कि अभी नहीं कहना है। लेकिन मनमें आप सब लोगोंके प्रति इतना अधिक प्रेम बढ़ता है कि मैं आप सभी लोगोंको हृदयसे पूज्य मानकर सिर नवाता हूँ। क्योंकि भाईजी जैसे व्यक्तिके लिये आप लोगोंके मनमें इतना स्थान है। मैं किसीकी बात भाईजीके सामने चलाता, आप लोगोंकी चलानेके लिये कभी-कभी बाध्य हो जाता हूँ। मेरा खुद यह स्वभाव है कि

भाईजीकी बात यदि कोई पूछ ले तो रात-रात बीत जाय पर हमें कहते-कहते सन्तोष नहीं होता, कई बार ऐसा देखा है कि लोग ऊबसे गये।

बात यह कह रहा था कि मैं यद्यपि भाईजीके विषयमें बिल्कुल कुछ भी नहीं जानता; पर उनकी चर्चा ही मुझे बड़ी प्रिय लगती है। केवल कुछ ऐसी ही बात है, ऐसे ही खास कारण हैं जिसे मैं किसीको नहीं बता सकता। बतानेपर भी कोई समझ नहीं सकता। केवल भाईजी जानते हैं और यदि श्रीजयदयालजी जानते हों तो मुझे पता नहीं। और कहनेकी इच्छा भी होती है, पर पता नहीं कहते-कहते, कहनेके बाद बहुत देरतक विरक्तिसे मन भर जाता है। रात बहुत देरतक यह सोचता रहा कि क्यों उस कमरेमें गया था? क्या लाभ था? मेरा मन बिल्कुल उपराम हो गया था। आप लोगोंके प्रति बहुत अधिक प्रीति रखनेपर भी यह दशा होती है।

यदि भाईजी पूछना चाहें, इन पत्रोंको देखना चाहें तो बिना किसी अटकके दिखा सकते हैं। क्योंकि कोई भी बात उनसे छिपाकर नहीं करनी है। बुरा भला जो भी हो वे तो कृपा ही करेंगे। डर तो अभी भी है पर वह डर भी एक विलक्षण प्रकारका है। वे नाराज होकर भी श्रीराधामाधवके पास ही भेजेंगे। पर मेरे मनमें लालसा रहती है कि उनकी इच्छा जैसी है, वही मैं भी करूँ। मेरे द्वारा उनके प्रतिकूल आचरण न हो। मुख्य यह डर लगता है कि इसे पढ़कर कहेंगे कि भजन छोड़कर बातें बनाता है। डर निकल जायगा, क्या होगा कुछ पता नहीं। यह आप विश्वास करें, मैं आप लोगोंको बहुत ही पूज्य दृष्टिसे देखता हूँ पर फिर भी मनमें पता नहीं कई कारण बरबस मनमें आकर उपरामता हो जाती है।

(४)

(पौष कृ०३ सं० १९९८ रात्रिके १०.१५ बजेसे १२.३० बजेतक श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी एवं श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीको लिखकर दी)

सच मानिये, जिन बातोंको कहने जा रहा हूँ, यदि उसपर मेरा सचमुच पूरा-पूरा विश्वास हो गया होता तो मेरा जीवन इतना विलक्षण होता—भाईजीके प्रति मेरा आकर्षण, मेरा व्यवहार ऐसा होता कि वह जगत्‌के लिये, श्रद्धाके लिये आदर्श हो जाता, पर वह है नहीं। और भगवान्‌की लीला ऐसी है कि मनमें यह इच्छा भी नहीं उठती कि यह हो। इच्छा हो तो सच मानिये, श्रीकृष्ण एवं श्रीभाईजी भक्तवाञ्छा-कल्पतरु हैं, ये अवश्य पूरी कर दें। मेरे मनमें इच्छा ही

नहीं होती कि प्रार्थना करूँ। यही आता है कि जैसे-जैसे पर्दा उठ रहा है, उसी क्रमसे उठने दूँ। नहीं तो नि:सन्देह उसी क्षण भाईजी मेरी प्रार्थना पूरी कर दें। पर जिस दिनसे यह बात मैंने सुनी हैं, उस दिनसे मुझे अत्यधिक पारमार्थिक लाभ हुए हैं, जिन्हें मैं पूरा-पूरा बता भी नहीं सकता।

बात यह है कि डेढ़-दो वर्ष पहले एक महात्माने मुझे एक गुप्त चिट्ठी लिखी थी, जिसका जिक्र मैं कर चुका हूँ। उन्हें श्रीकृष्ण-लीला प्रविष्ट एक बहुत ऊँचे संतका साक्षात्कार हुआ और उन्होंने उनसे कई बातें पूछीं। मैं पत्र ही आपको दिखला देता, पर उसमें यह स्पष्ट लिखा हुआ है—यह पत्र आप किसीको भी नहीं दिखाइयेगा। यह भी न दिखानेका कारण है तथा उसमें कई और व्यक्तियोंके जिक्र हैं तथा एक-दो और कारणोंसे भी नहीं दिखला रहा हूँ। मेरे पास पड़ा है, प्राणोंके समान उसे मैंने अपने नित्यकर्मकी पुस्तकोंके साथ रखा है। यदि वे खो न गये, मेरे मरनेतक इसी प्रकार संयोग लगा रहा, आप जिन्दा रहे आपकी इच्छा रही तो मिल भी सकता है, अथवा आगे चलकर मेरा मन बदल जाय तो आप लोगोंको दिखला दूँगा। अस्तु, मेरे ऐतिहासिक ज्ञानके आधारपर मैं यह समझता हूँ कि उन महात्माका प्रादुर्भाव उस समय हुआ होगा जब शाह अकबर दिल्लीके तख्तपर थे। उनसे जब उन्होंने यह पूछा कि आप श्रीजयदयालजी एवं श्रीहनुमानप्रसादजीके विषयमें बतलाइये (बहुतसे प्रश्नोंके बाद) इसके उत्तरमें जो उन्होंने कहा था वह यह है—(वे हँसने लगे और बोले) आप मेरी परीक्षा ले रहे हो, 'आप तो जानते ही हैं कि हनुमानप्रसादका सूक्ष्म शरीर बिलकुल श्रीप्रियाजीका स्वरूप हो गया है।'*

अब मैं अपनी ओरसे इस बातको समझानेकी दृष्टिसे बहुत ही संक्षेपमें थोड़ा लिख दे रहा हूँ। आप सोचें—सूक्ष्म शरीर क्या है? भाईजीका पाञ्चभौतिक शरीर (इन्द्रिय-गोलकोंके सहित) अर्थात् इन्द्रिय-गोलकोंके सहित जो पाञ्चभौतिक ढाँचा है, केवल उतना ही बचा हुआ है। बाकी सबका सब, पूराका पूरा राधाजीके रूपमें परिणत हो गया है। आजतक इस पारमार्थिक स्थितिका वर्णन मैंने किसी शास्त्रमें भी नहीं पढ़ा है और चैतन्य महाप्रभुके सिवा किसी भी भक्तके जीवनमें इस स्थितिका संकेत प्राप्त नहीं होता। मैं यह नहीं कहता कि जगत्के इतिहासमें भाईजीका पहला उदाहरण है। ऐसे कुछ विरले महात्मा हुए होंगे पर वह बात प्रकाशमें नहीं आयी और ऋषियोंने जान-बूझकर मालूम पड़ता

* **द्रष्टव्य :** 'करते मेरे लिये मुझे वे 'प्रिया' रूपमें अंगीकार' (पद-रत्नाकर, पद सं० ५१६)

है, शास्त्रमें इस स्थितिका उल्लेख नहीं किया। और कहीं हुआ हो तो मेरी दृष्टिमें नहीं आया। वस्तुत: श्रीकृष्णकी इस गोपीभावकी लीला एवं सब प्रकरण सर्वथा अनिर्वचनीय वस्तु है। ब्रह्मकी प्राप्तिके बाद उस तत्त्वका उन्मेष भाग्यशाली महापुरुषोंमें होता है। वह सर्वथा मन-वाणीके परेकी चीज है; पर शाखाचन्द्रन्यायसे बहुत संक्षेपमें दो-एक बात आपलोगोंको कह दे रहा हूँ। सचमुच यदि अत्यन्त सौभाग्यके उदय होनेपर कोई गोपीभावकी साधनामें लगता है तथा श्रीराधाकृष्णकी अपार कृपासे उसकी साधना सफल होती है, तब उसे भावदेहकी प्राप्ति होती है। इसका उदाहरण अर्जुनका अर्जुनी बनना है, नारदजीका गोपी बनना। इस भावदेहका तत्त्व भी सर्वथा सच्चिदानन्दमय होता है। और किसी-किसी बिरलेको इस भावदेहकी प्राप्ति होकर लीलामें प्रवेशका अधिकार प्राप्त होता है। इसके बाद मृत्युके बाद यही भावदेह ही सेवामें नियुक्त होती है। पर भावदेहके द्वारा भी जिस रूपका अभिमान होता है, वह या तो मंजरी देहका होता है या श्रीराधाजीकी सखीका। श्रीराधाकी सखियोंके अनुगत होकर सेवामें, लीलामें यथायोग्य पार्ट करना मंजरियोंका स्वरूप है। सखियाँ नित्य हैं और मंजरी-देहमें प्रवेशकी गुंजाइश है। साधनसिद्धा जितनी भी गोपियाँ हैं, वे या तो मंजरीके रूपमें या सखीके कुछ अंश नीचेके स्तरमें अर्थात् साधनसिद्धा सखीके रूपमें सेवाका अधिकार प्राप्त करती हैं पर सूक्ष्मदेह राधाजीके रूपमें परिणत हो जाना इससे कुछ भिन्न है। ऐसी स्थिति होनेपर एक क्षणके लिये भी बाह्य जगत्की स्फूर्ति नहीं होती। केवल महाप्रभुके अन्तिम जीवनका उल्लेख ऐसा प्राप्त होता है कि ठीक-ठीक राधाजीसे उनका तादात्म्य हो गया था। पर उनके विषयमें भक्तोंकी तो यह मान्यता है कि वे स्वयं श्रीकृष्ण थे। अत: यह स्थिति उनके लिये कुछ विशेष महत्त्व नहीं रखती। पर भाईजीके जीवनको देखनेपर यह मालूम होता है कि जीवभावको प्राप्त ये एक दिन अवश्य थे। इसीलिये इस प्रकारकी स्थिति कितनी दुर्लभ है एवं कितने अनिर्वचनीय सौभाग्यका परिणाम है, यह सहज ही में अनुमान हो सकता है। दूसरे शब्दोंमें भाईजी एक क्षणके लिये भी बाह्य जगत्में नहीं आते। फिर प्रश्न उठता है कि व्यवहार कैसे चलता है, इसका तार्किकोंके लिये तो उत्तर दूसरे ढंगका है, पर श्रद्धालुओंको इस प्रकार समझना चाहिये कि जब स्वयं-स्वयं राधारानी इस पाञ्चभौतिक ढाँचेके पर्देके भीतर नृत्य कर रही हैं तो उनकी सर्वसमर्थाशक्ति भी विकसित रहेगी ही। इसीलिये 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते' ..... की बात भाईजीके लिये सर्वथा लागू पड़ रही है।

भाईजीके इस पाञ्चभौतिक ढाँचेके अन्दर राधारानी हैं, एक क्षणके लिये भी अपने स्वरूपभूत ज्ञानसे अर्थात् मैं राधा हूँ, इस ज्ञानसे विचलित नहीं होते, पर लोगोंकी जैसी मान्यता उनके सम्बन्धमें होगी, उसके अनुसार उनकी सर्वसमर्थताशक्तिके कारण व्यवहार यंत्रकी तरह हो जायगा। इस सम्बन्धमें इतनी बातें है कि लिखते-लिखते रात बीत जायगी और फिर पूरा-पूरा समझाया नहीं जा सकता। यह साधनसापेक्ष है। अर्थात् भाईजी (राधारानी) जिसे दया कर इसका रहस्य समझा दें, वही यत्किञ्चित अनुमान लगा सकता है कि व्यवहार ऐसे चल रहा होगा। तर्कके लिये कोई स्थान नहीं हैं। अस्तु, आप निश्चय समझें, भाईजी निरन्तर राधाभावाविष्ट रहते हैं, जिस प्रकार अर्चाविग्रहमें अर्चावतार होकर विलक्षण रूपसे अघटन घटन संभव है उसी प्रकार दूसरे शब्दोंमें यह समझ लें कि भाईजीके नामसे अभिहित इस पाञ्चभौतिक ढाँचेमें राधारानीका अवतरण हो गया है। जबतक यह ढाँचा रहेगा तबतक श्रद्धाकी जरूरत नहीं है, उन्मुख होते ही अधिकारके अनुसार लाभ मिल जायगा। भाईजीका वस्तुगुण इतना अधिक है कि जो प्राणी इनके संस्पर्शमें आये, आयेंगे सबके सब भगवान्‌को इस जन्ममें या एक और (केवल एक और) जन्म धारण करके अपनी इच्छाके अनुसार भागवती गति प्राप्त करेंगे। यह होगा वस्तुगुणसे, भावकी जरूरत नहीं है। ऐसा इसलिये कि भगवान् श्रीकृष्णकी स्वरूपाशक्ति श्रीराधारानीका अवतरण हुआ है। महाप्रभुके विषयमें आपने जो-जो बातें सुनी हैं, ठीक-ठीक वही बातें जगत्‌के उद्धारके सम्बन्धमें इनपर लागू है। इतना होते हुए भी 'ये यथा मां .....' के अनुसार जीवनकालमें ये लोगोंकी भावनाके अनुसार ही दीखेंगे। सावित्रीकी माँको पतिके रूपमें, माँजीको हनुमानके रूपमें तथा जो जिस भावनासे जो काम इनसे कराना चाहेगा, यदि उसका अमंगल नहीं होगा तो उसे ही ये करेंगे। आर्तको आर्ततासे मुक्ति, अर्थार्थीको धन अर्थात् जो चाहेगा वही मिलेगा। भक्तोंकी तरह इनकी जगत्-उद्धारकी चेष्टा नहीं रहेगी। कल्याण-सम्पादन जो हो रहा है—उसे भी ऐसा समझिये कि श्रीजयदयालजीकी चाह तथा अनन्त ग्राहकोंकी सच्ची चाहका प्रतिबिम्ब, प्रतिबिम्बित हो रहा है। भाईजी अब उस standard से नहीं जाँचे जा सकते। अब इनकी जाँच भागवती standard पर होगी। जिस प्रकार दो विरोधी गुण भगवान् श्रीकृष्णमें युगपत् रहते हैं, एककालीन मुग्धता और एककालीन सर्वज्ञता, उसी प्रकार भाईजी एक कालमें ही राधाभाविष्ट रहकर भी जगत्‌को हनुमानप्रसादका अभिमानी बनकर

मोहित कर सकते हैं। इनका बोलना, साधनकी चेष्टा करना, साधना न होनेपर उदास होना, उन्नतिकी चेष्टा करते हुए देखे जाना, सर्वथा जगत्‌की शिक्षाके लिये लीलामात्र है। वस्तुत: उसी समय इस ज्ञानसे सम्पन्न हैं कि मैं राधा हूँ और जिस समय आप उन्हें कन्यादान करते हुए देखते हैं, किसीके व्यापारकी बात करते हुए देखते हैं ठीक उसी समय, उसी क्षण उस ढाँचेके भीतर दिव्य देशमें एक ऐसी चिन्मयी लीला चलती रहती है कि जिसकी कल्पना भी हम लोगोंकी मलिन बुद्धि नहीं कर सकती।

बहुत संक्षेपमें, सूक्ष्म शरीरका श्रीप्रियाजीके स्वरूपमें परिणत होना क्या है, यह अपनी मानवी बुद्धिके आधारपर आपसे इतनी बातें लिखी है। आप इससे अधिक अच्छा सोच सकते हों तो हमें पता नहीं, पर चर्चा मंगलकारी है, इसलिये ऐसा लिख दिया। और यदि नहीं सोच सकते होंगे तो इससे थोड़ी अवश्य सहायता मिल ही सकती है। इस बातको विचार करें कि मरनेके बाद जो इन्द्रियाँ, गोलकोंके सहित शरीर मुर्दारूपमें उपलब्ध होता है, उतने ही का नाम स्थूल शरीर है, बाकी १७ तत्त्वोंके शरीरको सूक्ष्म शरीर कहा जाता है और उन महात्माने यह कहा है कि बिलकुल प्रियाजीका स्वरूप और सूक्ष्म शरीर। मैंने ज्यों का त्यों उनका शब्द ही कल पत्र पढ़कर याद कर लिया है।

इतनी बात तो अवश्य है कि भाईजीका आँखें खोलना, आँखें मींचना, किसीकी ओर देखना—सब चेष्टा श्रीराधारानीकी चेष्टा है। सच मानिये, ऐसा दुर्लभ मौका मिलना बड़ा ही कठिन है। यदि केवल कोई उन्मुख हो जाय, उसे इसकी सत्यताका प्रमाण खोजना नहीं पड़ेगा। और जो उन्मुख होकर इन्हें आत्मसमर्पण कर दे, उसके लिये तो कहना ही क्या है। किसीपर भी कृपाप्रकाश करते समय भी यह समझना चाहिये कि यह ठीक उसी प्रकार होता है कि जिस प्रकार किसीने राधाजीकी उपासना की और राधाजी उससे प्रसन्न होकर उसे फल देनेके लिये आयें तो राधाजीका उस समय यह ज्ञान कि मैं राधा हूँ, अक्षुण्ण बना रहता है। वैसे ही भाईजी दुजारीको इनकी भावनाके अनुसार, मेरी भावनाके अनुसार मुझे, आपको आपकी भावनाके अनुसार फल देते हुए भी निरन्तर राधाभावाविष्ट रहते हैं। इनके अन्त:करणमें उसी साधककी विशेष स्फूर्ति होगी, जो इन्हें आत्मसमर्पण कर देगा, उसीको अपनी विशेष कृपा करके साधन मार्गपर बढ़ा ले जायेंगे, नहीं तो जो साधारण वस्तुगुणका नियम है, वही सबके लिये लागू होता होगा। नहीं तो इनमें भगवान्‌की तरह विषमताका दोष

आ जायगा। इसीलिये यद्यपि किसी भी भावसे इनके साथ सम्बन्ध हो, परिणाममें तो अनन्त मंगलकारी है, निश्चय है। जिस प्रकार श्रीकृष्णके दर्शनोंसे कृतार्थ उनके अवतार-कालमें सभी हुए, पर दुर्योधनको अन्ततक जादूगर ही दीखते रहे और भीष्मको पुरुषोत्तम पुरुष, वैसे ही भाईजीसे सम्बद्ध समस्त प्राणी कृतार्थ हो जायेंगे, निश्चय हो जायेंगे, परन्तु इनके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान होकर इनके संगका वास्तविक आनन्द तो समर्पण करनेवालेके लिये ही संभव है।

जब मैंने पहले-पहल सुना तो मुझे हठात् विश्वास नहीं हुआ—सोचा, ऐसा कैसे हो सकता है? कई प्रकारकी सात्त्विक शंकाएँ उपस्थित हुई। पर ये शब्द मुझे बरबस टानते थे। बहुत दिनोंके बाद स्वयं भाईजी एक दिन व्रज-प्रेम, गोपी-प्रेमपर प्रवचन करते हुए कुछ ऐसे-ऐसे मार्मिक कई वाक्य बोल गये, तब इसकी कुंजी मिली। उस दिन समझा कि ऐसी स्थिति तो सम्भव है और खूब सम्भव है, पर यह अवश्य ही किसी बिरले महात्माके जीवनमें होती है, हुई होगी और होगी।

(५)

(१९९८ पौष कृ० ९ गोस्वामी, रामेश्वरजी जालान, गोवर्द्धनजी, गम्भीरचन्दजी दुजारीको स्वामीजीने लिखकर दिया)

सर्वोत्तम बात मेरी समझमें यह है कि भाईजीका कोई भी प्रेमी केवल संग करनेके लिये ही इनका संग करे और कोई भी उद्देश्य न रखे। उसका स्वरूप है; केवल संगकी इच्छा रखनी अपनी शक्तिभर भरपूर चेष्टा भी करनी—मेरा सुधार हो रहा है कि बिगाड़, उन्नति हो रही है कि अवनति, मेरी वृत्तियाँ अभी भी नहीं सुधरी इन बातोंकी ओर बिलकुल ध्यान न देना। फिर निश्चय समझिये उसे भाईजी वह अनुपम दान दे जायेंगे जिसकी कल्पना भी कोई कर नहीं सकता। यह सर्वोत्तम बात है जो मैं भाईजीके सम्बन्धमें कह सकता हूँ। सच मानिये, यदि ऐसा कोई अपनेको बना सके, फिर भाईजी उसे अपने साथ श्रीकृष्ण लीलामें ही प्रवेश करायेंगे। बुरा से बुरा जीवन है, कोई परवाह नहीं, पापकी भयानक स्फुरणायें मनमें उठती हैं पाप होते हैं, कोई परवाह नहीं पर भाईजीका संग करना है, ऐसे संग करनेवालेको भाईजी अपने साथ अवश्य, अवश्य, अवश्य ले जायेंगे। इतना सुगम होनेपर भी शायद मेरी दृष्टिमें ऐसा कोई नहीं है जो संगके लिये संग करता हो, मैं तो हूँ ही नहीं। कोई भी साधन आवश्यक नहीं है। सर्वोत्तम बात मैंने हृदयसे आपसे कही है। अवश्य महापुरुषोंका

दर्शन कीजिये, बात कीजिये, सत्संग कीजिये पर मनमें व्यभिचार न हो कि भाईजी डाटेंगे, खीझेंगे, धमकायेंगे। एक शर्त है भूल गया, किसी और महापुरुषका साझीपनाका भाव इसमें नहीं होना चाहिये। जगत्‌में महापुरुष हैं, उनके चरणोंकी धूलिको मेरा नमस्कार है, पर मुझे भाईजीका संग करना है। सच मानिये भजन न होनेके कारण अत्यन्त नीचेका ही रूप हम लोगोंके सामने है। भजन करके देखिये फिर चारों ओर इनकी कृपा आपको लपेटकर ऐसा प्रकाशमय दिव्य स्वरूपकी झाँकी करायेगी कि अभी तो कल्पना भी सर्वथा असम्भव है। पर भजन भी इनकी कृपासे ही होगा। ऐसे विश्वासीके प्रति इतनी कृपा तो ये प्रारंभमें ही कर देंगे कि उनकी धमकीसे उसका चित्त विचलित नहीं होगा। भाईजीका अनुगत श्रद्धालु देखे तो कोई हर्ज नहीं। तो फिर अवसरकी उस क्षणकी प्रतीक्षा करिये जब अपनी लीला संवरण करते समय अहैतुक दानसे कुछ आपको भी दे जायँ। इसका रूप है, अंततक अपने मनमें इनसे आशा रखनी आप छोड़ दें। आपकी मर्जी, मैं आपकी कृपाके बलपर ही, भाईजी मैं अपनी ओरसे नहीं छोड़ूँगा, यह मेरा दृढ़ विचार है। इस प्रकारका भाव रखकर चाहे प्रारब्धवश कहीं भी रहना पड़े, पर मानसिक सम्बन्ध बनाये रखनेपर, शारीरिक सम्बन्ध भी बीच-बीचमें इनकी कृपासे अवश्य मिलेगा। कभी-कभी लड़कपन कर बैठता हूँ—भगवान् और भाईजीके पास किसीकी सिफारिशकी जरूरत नहीं है, बिलकुल नहीं है। पर लड़कपनवश कुछ खूब अच्छी तरह बातें सजाकर जिस किसीकी भी चर्चा हमने चलायी है, मैं देखता हूँ वे तो कृपा उड़ेलनेके लिये तैयार हैं पर वह ग्रहण करनेको तैयार नहीं इसका क्या उपाय। इनकी कृपाका एक क्षणका करोड़वाँ अंश आप किसी प्रकार ग्रहण कर लें तो फिर नाम छूटे ही नहीं। मैं जो इनके पास हूँ, सर्वथा इनकी कृपा हमें रखे हुए हैं। यहाँ जितने आदमी मेरी दृष्टिमें हैं, उनसे सबसे अधिक मेरी दृष्टि गोस्वामीजीकी ओर आकर्षित होती है और मैं सोचता हूँ कि यदि चाहें तो ये ऐसे बननेकी चेष्टा कर सकते हैं। कृपामें विषमता नहीं है पर चाहकी कमीके कारण लोगोंको कई परिस्थितियोंका प्रतिबंधक लगा हुआ है। पर आपपर चाहे आपकी चाहके कारण अथवा अनिर्वचनीय सौभाग्यवश हो आप इस परिस्थितिमें हैं कि इसकी साधना कर सकते हैं। भाईजीका स्नेह कहीं भी कम-वेशी नहीं है पर आपपर वह किसी अंशमें मुझे प्रकट-सा दीखता है।

उस मंडलीका अभाव-सा है और दूसरी बात इनकी कही हुई बातपर बहुत कम ध्यान देना। तीसरी बात है सांसारिक प्रपञ्चका बाहुल्य। यदि दूसरी और तीसरी बात न होकर भी सच्ची लगन रखनेवाली मंडली बन जाय, जिसकी इनमें सचमुच श्रद्धा हो और सुननेकी लगन हो, तो फिर बाध्य होकर भाईजीके मनमें भगवान्‌की प्रेरणा हो जाय जिससे वे हँसाते-खिलाते भी स्थिति सर्वथा बदल दें। बात मेरी समझमें ऐसी आती है कि भाईजी अब इस जगत्‌से बहुत ऊँचे उठ गये हैं और निरन्तर उठते ही जा रहे हैं, अत: अब इनकी ओरसे चलाकर लोगोंकी श्रद्धा-प्रेम बढ़ानेकी चेष्टा असम्भव-सी है। पर मंडली ऐसी जुट जाय जो भाईजीको तंग करनेका उद्देश्य तो रखे नहीं, पर मन ही मन इनकी बात सुननी चाहे तो फिर अपने आप इनके द्वारा ऐसी चेष्टा हो सकती है कि सब कोई आकर्षित हो जायँ। ये जो बातें कहते हैं कि ऐसा करो, तो उसके करनेकी सच्ची नियत लेकर बढ़नेकी चेष्टा यदि मनुष्य करे तो कोई बात नहीं, सफल पूरी हो, यह शर्त नहीं है। शर्त यह है कि चलनेकी चेष्टा करनी, यह भी हम लोगोंसे नहीं होता, इसलिये व्यक्तिगत रूपसे ही लाभ उठानेकी चेष्टा होनी चाहिये। और उसकी प्रारंभिक प्रक्रिया है सचमुच अपनी नीयतसे (आवश्यक काम करनेके बाद) भजनकी तत्परतापूर्ण चेष्टा करनी। भजन करके देखिये इनकी कृपाकी धारा बहती हुई दिखायी देगी। और, आज जो इनका स्वरूप दीखता है, उससे अत्यन्त विलक्षण रूप दीखेगा। निरन्तर विलक्षणता बढ़ती ही जायगी। पारिवारिक आसक्ति इतनी अधिक है कि इस समय यहाँ है इसलिये यह भाव है। यहाँसे जाते ही यह भी भूल जाइयेगा।

तुलसीकी उपासना श्रीराधारानीने की थी श्रीकृष्णके साथ मिलन होनेके लिये। कल्पभेदसे तुलसीकी महिमा मैं देख रहा था, आप लोग सुनेंगे तो बहुतोंको विश्वास ही नहीं होगा कि इतनी महिमा सच नहीं है। यहाँतक भगवान् शंकरने कहा है कि जलती हुई चितामें यदि तुलसी काष्ठका एक तिनका भी प्राणीके भाग्यसे पड़ जाय तो फिर उसी क्षण विष्णु पार्षद उसे वैकुण्ठ ले जाते हैं। त्रिकालज्ञ ऋषियोंपर अविश्वास मनकी मलिनताके कारण ही होता है। सचमुच भजन यदि हो तो प्रत्यक्षकी तरह सब बातें अनुभवमें आने लगती हैं। भजन बिना भगवान् या महापुरुषकी कृपा हो ही नहीं सकती। फिर क्यों नहीं होता? मैंने अपने जीवनमें यह प्रत्यक्ष अनुभव किया है कि सब कुछ उनकी कृपासे होता है। अहंकार कुछ भी काम नहीं देता। यह इच्छा हो कि मैं करूँ, तब भजन होता है, यह होता है उनकी दयासे ही। हम करते नहीं जैसा आप कहते हैं, इसका उत्तर हमें नहीं मालूम पर सोचता हूँ कि हम क्यों नहीं करते क्या उत्तर है? हमें ऐसा मालूम पड़ता है कि जबतक हम कर लेंगे, ऐसा अभिमान रहता है तबतक नहीं होता।

देखें, यदि आज उत्साह नहीं हो तो किसी दूसरे समय। बात यह हुई कि कल हठात् कई प्रकारके भाव मनमें आ गये, फिर आपसे कुछ कहनेकी इच्छा हो गई। बात बहुत दिन बाद शायद भूल भी जाऊँ, इसलिये भी मनमें आ गया। अत: कोई जल्दी नहीं मेरी ओरसे सर्वथा आपकी प्रसन्नतापर ही सब कुछ निर्भर करता है।

(६)

(पौष शु० १/१९९८ श्रीवासुदेव सिंघानियाको स्वामीजीका आदेश)

मैं भाईजीकी बात बहुत कम, बहुत कम, बहुत कम जानता हूँ। दुजारीजी बहुत जानते हैं। पर यह आग्रह हो कि आप ही कुछ सुनाइये तो मेरी प्रार्थना मानकर एक महीना एक लाख नाम जप कीजिये। नामजप भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये कीजिये। इसलिये नहीं कि स्वामीजीसे बातें सुननी हैं। फिर सचमुच हमें बड़ा सुख मिलेगा और उत्साह भी होगा और भगवान्‌की इच्छा हुई तो कुछ अपनी बुद्धिके अनुसार जरूर सुनानेका विचार है।

एक तुच्छ प्राणी हूँ पर हृदयसे बड़े प्रेमसे यह सलाह देता हूँ कि आप कुछ दिन कम-से-कम एक महीना १ लाख रोज नाम जप करके, यदि एक महीना बाद मुझसे भाईजीके विषयमें कुछ कहनेको कहेंगे, तो हमें बड़ा उत्साह हो सकता है, फिर कुछ कहनेकी इच्छा हो सकती है। आप नाराज मत होंगे। अभी बिलकुल कहनेकी इच्छा नहीं हो रही है। प्रेमकी भाषामें यह कहता हूँ कि मेरी फीस एक महीना प्रतिदिन एक लाख नाम जप दे दीजिये फिर बात हो।

.... यदि इनमें मन फँस गया तो बहुत संभव है कि श्रद्धा घट जायगी। केवल पारमार्थिक सम्बन्ध रखिये। स्त्री अच्छी हो गयी, मान लें नहीं अच्छी होती तो क्या भाईजी महात्मा नहीं होते। पर आपके मनपर इन तुच्छ संस्कारोंका पड़ना ठीक नहीं है। यदि आप भाईजीको मानें तो यह मानना चाहिये कि ये तो असंभवको संभव कर सकते हैं। ये बातें क्यों हैं? समस्त जगत्‌के शहंशाह, बादशाहके पास उसके खजानेमेंसे ५ रुपयेका नोट भीख माँगना जैसा है, और

मिल जानेपर बहुत खुश होना है, वैसे ही भाईजीके विषयमें इन तुच्छ चमत्कारोंकी कल्पना करके खुश होना है। यों तो किसी प्रकारसे भी भाईजीका चिंतन मंगलकारी ही है, पर यदि इन बातोंको मन जरा भी पकड़ता है तो मेरी समझमें भाईजीसे असली लाभ उठानेमें बहुत देर लगेगी। बहुत देर लगना क्या हानि नहीं है? फिर आगे बढ़ना बंद हो जाता है।

मेरी समझमें महात्मा बहुत ऊँचे होते हैं। भविष्यमें लौकिक बातोंसे भाईजीकी सर्वज्ञताकी परीक्षा लेना छोड़ दीजिये, यह बार बार प्रार्थना है। कोई कहे तब भी मत सुनिये। ऊपरी मनसे इन कामोंको सुन लें।

भाईजीकी किसी प्रकारके लौकिक सम्बन्धको लेकर परीक्षा लेना बड़ी भारी भूल है। आपने जितनी बातें मुझसे अभी कहीं उसे सुनकर मैं आपको अत्यन्त प्रेमसे सलाह देता हूँ कि आप इन बातोंको भूलकर केवल पारमार्थिक लाभके लिये इनकी बात सोचिये।

पर आपके मनमें इनका, इन बातोंका संस्कार तो पड़ गया है।

ये बातें इतनी मामूली, इतनी तुच्छ, इतने नीचे दर्जेकी हैं कि आगे चलकर इनसे श्रद्धा घट भी सकती है।

आप इन्हें जैसा मानियेगा, ये आपके लिये ठीक वैसे ही बन जायेंगे। आप यदि इनके विषयमें यह समझेंगे कि ये मेरी बात जनानेपर जानेंगे, तो फिर जनानेपर ही जाननेकी लीला देखनेको मिलेगी, और यदि सचमुच भीतर हृदयसे आपका पक्का निश्चय है कि भाईजी तो सब जानते ही हैं तो फिर सब जानते हैं। अवश्य ही पूरा-पूरा सम्पूर्ण रूपसे विश्वास होनेपर ही इस बातका अनुभव होगा।

फिर भी आपसे प्रार्थना करता हूँ कि उन तुच्छ संस्कारोंको मनसे निकाल दीजिये। वे बातें असलमें सच्चे महात्माकी महिमाको घटानेवाली हैं। आपका हृदय सरल है, आपने मुझसे साफ-साफ कह दिया, इसलिये मैं बहुत प्रसन्न हूँ। इसीलिये प्रेमसे कहनेका साहस भी कर रहा हूँ कि वस्तुतः महात्माकी महिमा कोई कह ही नहीं सकता। जो महिमा स्वयं भगवान्‌की है वही महिमा सच्चे महात्माकी है। यदि सच्चे हृदयसे, भीतरके हृदयसे आपका पूरा-पूरा विश्वास हो जाय कि भाईजी महात्मा हैं फिर तो उसी क्षण आप स्वयं ऐसे विलक्षण पुरुष बन जायँ कि लोग आपको देखकर चकित रह जायँ। अभी बात सुननेसे, सुनी हुई बातके आधारपर ऊपरी मनसे एक भाव पैदा हो गया है कि भाईजी महात्मा हैं, अभी इसकी नींव बिलकुल नहीं पड़ी है। यह ऊपरका भाव

भी बड़े पुण्यसे अत्यन्त सौभाग्यसे हुआ है, बड़ा ही सुन्दर भाव है, पर इसकी नींव दृढ़ करनी चाहिये। बिना नींवके मकान नहीं बनता। भाईजीको यदि आप महात्मा मानने लग जाइयेगा तो फिर आपको कुछ भी करना-कराना नहीं पड़ेगा। क्योंकि महात्मा मिल गये तो फिर भगवान् मिल गये। पर असली मान्यता नहीं है और यह मान्यता जबतक अन्तःकरण मलिन है, तबतक हो ही नहीं सकती। जैसे एक आदमी अंधा है, उसकी रोशनी बंद हो गयी है, उसके सामने किसी विलक्षण वस्तुकी बात आप कहें, पर वह बहुत प्रेमसे सुनकर भी उस वस्तुकी ठीक-ठीक धारणा नहीं कर सकता। जब उसकी आँखकी रोशनी खुलेगी तभी वह समझ सकता है कि ओह! यह वस्तु तो इतनी विलक्षण है। उसी प्रकार हम लोग अंधे हैं अर्थात् हम लोगोंका अन्तःकरण मलिन है। हम लोग महात्माकी बात सुनकर भी बिलकुल नहीं जान सकते कि असलमें महात्मा क्या वस्तु है, उसकी कितनी महिमा है। जब अन्तःकरण पवित्र होगा तभी समझेंगे कि महात्मा यह है और उसकी ऐसी महिमा है। इसीलिये यदि भाईजीमें श्रद्धा बढ़ाना चाहते हैं, सचमुच भाईजीसे लाभ उठना चाहते हैं तो सर्वोत्तम बात हृदयसे आपसे निवेदन कर रहा हूँ कि यथाशक्ति पापसे पूरा-पूरा बचनेकी चेष्टा करते हुए कम-से-कम प्रतिदिन १ लाख नाम लीजिये। लेते हों, इससे भी ज्यादा लेते हों तो बड़े आनन्दकी बात है। जबतक यह न कीजियेगा, तबतक भाईजीकी असली महिमाका ज्ञान असंभव-सा है। भाईजी या भगवान् स्वयं कृपा करके बिना भजन किये हुए ही आपको अपनी महिमाका ज्ञान करा दें; यह दूसरी बात है। वे लोग स्वतंत्र हैं। पर सर्वसाधारण नियम यह है कि भजन करना ही पड़ेगा। यदि सचमुच आप भजन करेंगे, तो फिर किसीसे पूछने नहीं जाना पड़ेगा। अपने आप सब बातें जान जायेंगे।

बिना भजन किये हुए जो बातें हैं सो सब ऊपर-ऊपरकी हैं। मनुष्य समझ ही नहीं सकता वह तो एक लड़कपनका खेल-सा है।

पहले आप यह बताइये कि भाईजीके विषयमें आप क्या सोचते हैं? आपको जरूरत होगी तो स्वयं भगवान्‌की प्रेरणासे वे बातें अपने आप सुननेको मिल जायगी। पर वह आपके हाथकी बात नहीं कि महिमा सुननेको मिल जाय।

तो फिर कीजिये, प्रयत्न कीजिये। और मेरी शर्त यह है कि कुछ दिन एक लाख नाम लीजिये। फिर मैं जिन्दा रहा और आपकी इच्छा हो तो मेरे पास आइयेगा मैं बड़े प्रेमसे भाईजीकी बातें कहनेके लिये उत्साहित हो सकूँगा।

(७)

(रतनगढ़ माघ कृ०७/९८ रात्रि के १० से ११ श्रीशिवकृष्णजी डागाको स्वामीजीने लिखकर दिया)

राधा राधा राधा

कायासे, मनसे, वाणीसे उनका संग करना।

जहाँतक हो, जबतक मौका भगवान्‌की दयासे मिलता रहे, तबतक अधिक-से-अधिक उनके पास रहा जाय।

मनके द्वारा उनके विषयमें जो कुछ बातें मालूम हो, उसका चिंतन करना चाहिये।

वाणीके द्वारा सच्चे श्रद्धालुओंके बीचमें उनकी चर्चा करनी चाहिये।

ये तीन बातें जितनी अधिक तथा जितनी तत्परता एवं लगनसे होगी, उतनी ही शीघ्रतासे महापुरुषोंकी कृपा प्रकाशित होकर उनका असलीरूप दीखने लग जाता है, जहाँ वह दीखा कि फिर तो मन उसीमें रम जायेगा, वाणी बंद हो जायगी और शरीर उनके चरणोंमें न्यौछावर हो जायगा।

मनमें लालसा तो पासमें रहकर उनकी सेवा करनेकी अर्थात् उनके कहनेके अनुसार यन्त्रकी तरह नाचनेकी रखनी चाहिये। पर यह मनकी बात है। उनसे खुलकर कुछ नहीं कहें, फिर वे जैसी आज्ञा दें, जहाँ रहनेकी कहें, वहीं रहें। अर्थात् पासमें रहना चाहता हूँ, यह खोलकर उनसे कभी मत कहें। सच्चे संत सब कुछ जानते हैं, उनसे आपके मनकी कोई बात छिपी नहीं है, ऐसी लालसा होनेपर भी वे अलग रखना चाहें तो उसीमें आपका मंगल है, अलग रहनेसे आपकी श्रद्धा बढ़ेगी इसीलिये अलग रखेंगे। बहुतसे कारण होते हैं, पर उनके सामने तो सब प्रत्यक्ष है, वे वही करेंगे, जिससे आपकी श्रद्धा बढ़े।

आपका मन जिसकी ओर अधिक आकर्षित हो, उन्हींके पास रहना ठीक है। दोनों ही विलक्षण महापुरुष हैं। अर्थात् जिसकी ओर मन ज्यादा करे उसीके पास रहनेकी मन-ही-मन लालसा रखनी चाहिये, पर खोलकर न इनसे कहना न उनसे कहना। दोनों जो आज्ञा करें, उसीको हृदयकी सारी तत्परतासे करना। फिर आपके लिये जो ठीक होगा, वह अपने आप हो जायगा।

भजन ऐसी चीज है कि बिना किसीके पास गये, बिना किसीसे पूछे, अपने आप सब मालूम हो जायगी। स्वयं हृदयमें प्रकाशित हो जायगी। बिना कहे बतानेवाले गले पड़कर बता जायेंगे। न चाहनेपर भी बता ही जायेंगे।

बिलकुल अनुभवमें बहुत दूरतक यह बात मेरे जीवनमें आ चुकी है। किसीके पास नहीं जाना, किसीसे मुँह खोलकर कुछ नहीं पूछना, केवल जीभसे नाम लेना और मनसे स्मरण करना, बस दो ही काम सर्वोत्तम है जो कर रहे हैं। फिर कुछ भी नहीं चाहिये।

पर मनमें भजनका अहंकार नहीं करना चाहिये। अर्थात् मैं ठीक कर रहा हूँ ये लोग नीचे दर्जेके पुरुष हैं, फालतू समय खोते हैं।

तेरे भावे जो करो भलो बुरो संसार।
नारायण तू बैठ कर अपनो भवन बुहार॥
सीयराम मय सब जग जानी। करउँ प्रणाम जोरि जुग पानी॥

आप भी पूज्य, वे भी पूज्य—पर हमें तो भजन ही करना है।

(८)

(माघ शु०४ रतनगढ़ वासुदेव सिंघानियाको स्वामीजीने लिखकर दिया, श्रीगम्भीरचन्द दुजारीजी पासमें सोते-सोते देख-सुन रहे थे।)

राधा राधा राधा

थारी इच्छा है आज कि कल? कल हमारा मन कैसा होगा। आज तो बात श्रद्धा-श्रद्धाकी चल रही है ५ बजेसे। वे आपके कामकी विशेष नहीं होगी। आपको मैं बड़े ही प्रेमसे आपके कामकी बात बताऊँगा, आप विश्वास कीजिये। जो सर्वोत्तम बात आपके लिये मेरी समझमें होगी, उसे तुच्छ समझके अनुसार कहनेकी चेष्टा करूँगा। प्रत्येक आदमीकी बात प्रत्येकको लाभदायक नहीं होती। खासकरके आपको यह सावधान रहना चाहिये कि सब बात सुननेसे लाभके बदले हानि भी हो सकती है। एक आदमी है, उसके सामने श्रद्धाकी बहुत ऊँची बात भी हो सकती है कि उसकी श्रद्धाको कम कर दे। और यह कोई रोक तो है नहीं कि आपको पढ़ाऊँ ही नहीं, पीछे जँच जायगा तो सब पढ़ा सकता हूँ। पर अभी जँचती नहीं है।

४ आदमीके सिवा पाँचवेंको मत पढ़ाइये। दुजारीजी, गोस्वामीजी, गोवर्द्धनजी और बजरंग बजाज। इनके अतिरिक्त किसीको मत पढ़ाइयेगा। यह शर्त है, अपने भाई पुरुषोत्तमको भी नहीं। कोई भी हो उससे झूठ नहीं कहना है। बड़े प्रेमसे प्रार्थना कर देनी है कि स्वामीजीने करार करा लिया है। आज १ घंटे बात करें फिर कभी पीछे। कोई यह नियम तो है नहीं कि आज ही

खतम कर दें। पर १ लाख नाम जपका नियम छूटेगा तब नहीं।

आपने उस दिन पूछा था कि भाईजी सर्वज्ञ हैं कि नहीं। (मनके भीतरकी बात जानना, सब बातें भगवान्‌की तरह जान लेना।)

एक बात आप सोचिये। आपके सामने जो भाईजीका पाञ्चभौतिक ढाँचा दीखता है, उसके भीतर क्या है। जैसे हम लोग पैदा हुए थे, जीव जिस प्रकार जन्म लेता है, उसी प्रकार भाईजी पैदा हुए थे। दूसरे शब्दोंमें एक जीवात्मा आजसे ४५-५० वर्ष पहले पैदा हुआ था जिसका नाम हनुमानप्रसाद रखा गया। पर भगवान्‌की कृपासे साधनाके द्वारा वह इतनी ऊँची स्थितिपर पहुँच गया कि जिसकी कल्पना भी हम लोगोंको नहीं हो सकती। अब समझानेके लिये आपसे कहता हूँ कि जैसे आजसे ५-७ वर्ष पहले भगवान् आवें और स्वयं इस पाञ्चभौतिक ढाँचेके अन्दर जो जीव था, उसे सर्वोच्च स्थिति, सर्वोत्तम पारमार्थिक स्थितिका दान करके उसे अपने हृदयमें छिपा लें और स्वयं उसकी जगहपर काम करने लगें, ठीक-ठीक यही हालत यहाँ हुई है। भाईजीके ढाँचेके भीतर जो आत्मा थी, वह तो सर्वोच्च पारमार्थिक स्थिति प्राप्त करके उनके हृदयमें उनकी सच्चिदानन्दमयी लीलामें सम्मिलित हो गई, अब उसकी जगहपर स्वयं भगवान् काम कर रहे हैं और तबतक करेंगे जबतक यह पाञ्चभौतिक ढाँचा रहेगा। अब आप समझियेगा कि मामाजी भगवान् हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वसमर्थ हैं, आपके सामने ठीक उसी प्रकार बने रहेंगे कि जैसा भानजेके प्रति होना चाहिये। कहेंगे—हाँ भाया, वासुदेव राजी तो हैं। वासुदेव विचारेको यह पता नहीं कि मेरे मामाजी जो थे, वे तो कबके चले गये, उनकी जगह स्वयं भगवान् मेरी बातका जवाब देते हैं, मेरी बात सुनते हैं, मुझे सलाह देते हैं। वह विचारा तो यही समझेगा—मामाजीने यह कहा है। अधिक-से-अधिक सोचेगा कि मामाजी महात्मा हैं, पर वह यह सोच ही नहीं सकता कि स्वयं भगवान् मेरेसे खेल कर रहे हैं। इसी प्रकार मांजीके लिये बेटा बने रहेंगे, सावित्रीके लिये पिता, सावित्रीकी माँके लिये पति और किसीको रत्तीभर भी यह पता नहीं चलेगा। ठीक-ठीक यही दशा यहाँ समझनी चाहिये। अब आप सहज हीमें सोच सकते हैं कि इनके लिये सब कुछ जानना हँसी खेल है। पर यह सर्वज्ञताका प्रकाश उसीके सामने होगा जिसका पूरा-पूरा संशयहीन विश्वास इनपर होगा। जो बात शास्त्रमें भगवान्‌के विषयमें आपने सुनी है, सुनेंगे वह सबके सब इस ढाँचेके भीतर प्रकट है, पर भगवान् क्या है, यह तो ठीक-

ठीक तभी मालूम होगा जब कि साधन करते-करते वे कृपा करके अपना पर्दा उठाकर आपको अनुभव करा दें। और फिर यदि वे चाहें और आपको यह बात याद रहे कि मामाजीको जो स्थिति आपने दी है, वह हमें दिखाइये। मामाजीकी आत्मा किस रूपमें इस समय है, आप दिखा दें। तभी वस्तुतः भाईजीकी पारमार्थिक स्थिति आप समझ सकियेगा। अर्थात् पहले भगवत्प्राप्ति होगी इसके बाद उनकी कृपा होनेसे ही भाईजीकी असली स्थितिका पता चलेगा। इसके सिवा कोई भी दूसरा उपाय नहीं है। एक तो मैं जानता ही नहीं, मैं सर्वथा एक तुच्छ प्राणी हूँ, पर जो कुछ भगवान्‌की कृपासे मैं कहूँगा उसे ठीक-ठीक तो समझना दूर रहे, बिलकुल आप नहीं समझ सकियेगा। बड़े प्रेमसे यह बातें आपको लिख रहा हूँ। नाराज मत होइयेगा। बिना साधनाके कोई भी नहीं समझ सकता। इस समय ऊपरकी स्थिति जो है, वह यही है कि स्वयं भगवान् उस ढाँचेके भीतरसे जवाब दे रहे हैं। कन्यादान कर रहे हैं, कल्याणका सम्पादन कर रहे हैं। पर यह बात हम लोग नहीं जानते। इसीलिये कोई तो उन्हें सलाह देता है, कोई उनकी बातका अविश्वास करता है, कोई उन्हें भला-बुरा कहता है, वे सुनकर हँसते हैं। ऐसी अवस्थामें क्या कर्तव्य होता है आप स्वयं सोच सकते हैं। अपनी समस्त चेष्टा लगाकर हृदयसे अपने आपको इनके चरणोंमें समर्पण करके निश्चिन्त हो जाना। मौका है। जहाँ प्रारब्ध पूरा हुआ कि खेला खतम है। शरीरका ढाँचा तो प्रारब्ध पर ही निर्भर है। भगवान् प्रकट तो तभीतक रहेंगे जबतक प्रारब्ध चलाना है। जिस भगवान्‌को खोजनेके लिये अनन्त कालतक तपस्या करनी पड़ती है, वे स्वयं इतने सुलभ हैं, पर विश्वास नहीं यही दुर्भाग्य है। मायाका पर्दा डाले हुए हैं, उनकी कृपासे कोई बिरला इस बातपर विश्वास करके निहाल होगा। यो तो भगवान् जब आये हैं तो इसका अनन्त लाभ सबको मिलेगा। जिस पर इनकी दृष्टि पड़ेगी वह बिना जाने पवित्र होकर कृतार्थ होगा ही, पर यह तो अन्तमें होगा, इनके संगका आनन्द तो आत्मसमर्पण करने पर ही मिलेगा। (कई कारणोंसे मैं सब बातें खोलकर नहीं लिख सकता, कुछ ढँककर लिखता हूँ।)

आपका ..... है। ठीक उसकी ऐसी दशा है कि मानो पारस पत्थरसे चटनी बटी जाय। मामाजी एक चीजको भाव तेज होसी के? चीजको भाव मन्दो हुसी? बस यही पूछकर ही और इसीके उत्तरसे उसे सन्तोष है। वह यह नहीं समझ पाता कि हाय, जिसके लिये करोड़ों वर्षतक ऋषि मुनि तपस्या

करके थक जाते हैं, वे स्वयं इस प्रकार अपनेको छिपाकर हमसे खेल कर रहे हैं। उसकी बुद्धिमें यह बात ही नहीं आ सकती। समझानेपर भी वह समझ नहीं सकता, क्योंकि उसके मनमें धनके प्रति आसक्ति है, उसे धन चाहिये। धन तो क्या, जगत्में ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसे भाईजी उसे दे नहीं सकें, पर उसका विश्वास भी इनपर नहीं है, निर्भरता नहीं है। अंतमें उसका कल्याण तो निश्चय हो जायगा, क्योंकि किसी भावसे संबंध हो, हुआ है भगवान्से। उसका ही नहीं जगत्के जितने प्राणीको इनका दर्शन होगा, सब-के-सब तर जायँगे। यह हो सकता है कि इनकी बात नहीं माननेके कारण एक जन्म और धारण करना पड़े। वह जन्म किसी भी योनिका हो सकता है। कुत्ता, गदहा, मनुष्य कोई भी योनि मिल सकती है, पर उस योनिका प्रारब्ध ऐसा होगा कि भगवान्का साक्षात्कार निश्चय ही हो जायगा। वे प्राणी अनन्त पुण्यशाली हैं कि जिन्हें एक बार भी इनका दर्शन प्राप्त हो गया है। वे जानते नहीं हैं बस इतनी ही कमी है। आपके लिये कल्याण तो निश्चित है पर यदि आत्मसमर्पण करके इनके कहनेके अनुसार चलनेकी चेष्टा हृदयसे नहीं होगी तो संभवतः एक जन्मका चक्कर और भी लग जाय। होगा ही, यह मैं नही कहता, पर जो इनसे जिद करके सांसारिक भोग चाहेगा उसे तो मेरी समझमें एक जन्म धारण करना पड़ेगा। जैसे उदाहरणके लिये आपका ...... है। वह चाहता है इनसे धन। अब दोमें एक बात होगी। या तो इसी जीवनमें उसके मनमें धनके प्रति इनकी कृपासे वैराग्य हो जायगा, पर यदि नहीं हुआ तो उसे करोड़पति बनानेके लिये, अरबपति बनानेके लिये उसका फिर एक जन्म होगा, क्योंकि ये तो भक्तवाच्छा कल्पतरु हैं। नहीं तो फिर सकामी भक्तका कोई मूल्य नहीं रह जाता। धन दु:खकी जड़ है, उसे भगवान् उसको दे ही नहीं सकते कि जिसके धन पाकर गिर जानेकी संभावना हो। यदि देंगे तो उसीको देंगे जिसे गिरनेका भय नहीं रह गया हो। यदि साधनाके द्वारा इसी जीवनमें वह स्थिति प्राप्त कर ले कि धनसे अनासक्त रहकर वह धनका उपयोग कर सके, पतनके मार्गसे ऊपर उठ जाय, तो इसी जन्ममें उसे वे अरबपति बना दें। पर न तो उसका इनपर विश्वास है, न निर्भरता। अर्थार्थी भक्त तो होना ही पड़ेगा। जो लक्षण होने चाहिये उसमें कहाँ है, वह तो भाईजीसे करार कराना चाहता है, भाईजीको जाँचना चाहता है तो भाईजीको उसके सर्टिफिकेटकी जरूरत थोड़े ही है कि परीक्षा दें। यदि सचमुच वह विश्वास करके धनके लिये ही इनपर निर्भर हो जाय तो इसी

जीवनमें या तो उसके मनमें वैराग्य पैदा कर देंगे या बचनेका उपाय करके करोड़पति बना देंगे। इनसे जो चाहेगा वही मिलेगा क्योंकि ये भक्तवाञ्छा कल्पतरु हैं। जो चाहो ले लो। भाव पूछता है, तेजी मंदी पूछता है। इन्हें मालूम है कि कौन आदमी इनसे क्या बात किस उद्देश्यसे पूछता है। कभी सच्चा तो बता देंगे। कभी जानबूझकर झूठ बता देंगे कि जिससे श्रद्धा कम हो जाय। कई बात ये ऐसी बता देंगे कि वह ठीक नहीं निकलेगी, इसमें पता नहीं, किस उद्देश्यसे किसकी श्रद्धा कम कर देनेके लिये करते हैं, पर सब ठीक विधि विधानसे करते हैं, तनिक भी गोल नहीं पड़ेगा, क्योंकि अब ढाँचेमें मामाजी नहीं है। अब हैं स्वयं भगवान् जिनके एक इशारेसे जगत बनता बिगड़ता है। पर भैया, इतनी बात सुनकर भी अन्त:करण जबतक निर्मल नहीं होगा तबतक ये बातें ठीक-ठीक क्रियात्मक रूपसे भीतर उतर ही नहीं सकती। उतरना असंभव है। दो ही उपाय है हृदयमें इनके चरणोंमें न्यौछावर होनेकी लालसा लेकर इनकी इच्छाके अनुसार जीवन, इनके हाथमें अपना जीवन सौंप देना और दूसरी बात जीभसे निरन्तर नाम लेना। आप सच मानिये यदि आप एक लाख नाम रोज नहीं लेते तो आप भले ही किसी दूसरेसे जो भी सुन पढ़ लें, पर मैं आपको इतनी ऊँची बात बतानेका साहस नहीं कर सकता था। इससे भी बहुत ऊँची बातें हैं पर मेरी इच्छा ही नहीं है। आप नाराज न हों। बस आप दो काम करें। जब भगवान् है तब उनकी कृपा भी तो वैसी ही है, फिर कठिन क्या है? आप चाहें तो उनकी कृपा बिना परिश्रमके आपसे करा ले। कई कारणोंसे बातें मैंने बहुत ढक करके लिखी हैं। आपसे मेरा बड़ा ही प्रेम है। एक तो भाईजीकी बात सुननेवाला स्वाभाविक मुझे प्यारा लगता है दूसरे आपने एक लाखका नियम लिया है। पर इससे अधिक सुननेसे लाभ आपको अभी शायद नहीं हो, मेरा मन ऐसा ही कह रहा है। दुजारीजी, गोस्वामीजी, गोवर्द्धनजीके सिवा (और आज फोगलाजी बैठ गये) नहीं तो इन चारोंके सिवा किसीके सामने इस प्रकारकी बातें खोलकर इन लोगोंके सिवा और किसीसे नहीं कहा है। इसलिये प्रेमकी कमीके कारण छिपा रहा हूँ, ऐसी बात बिलकुल नहीं समझिये। इन्हीं बातोंको यदि भाईजी सुनेंगे तो वे बाहरी रूपसे तो मुझपर जरूर नाराज होंगे। उनसे छिपाना नहीं है। आप चाहें, वे चाहें तो एक-एक बात उनसे पढ़ा दे सकते हैं। उनसे छिपानेके लिये नहीं कहता। पर औरोंसे तो छिपानेकी बार-बार प्रार्थना है। मैंने स्वयं बहुत संकोचमें पड़कर इतनी बात

आपसे कही। बार-बार मनमें आता था कि भाईजीसे पूछ लूँ, पर पूछनेपर तो शायद वे मना कर देते। यद्यपि उनसे यह छिपा नहीं है। मैं तो एक महान् अधम प्राणी हूँ, मेरेमें स्वयं बहुत त्रुटि है, आपको कोई नीचा समझता हूँ ऐसी बात बिलकुल नहीं है, पर मेरी जबान ही नहीं खुलती। आप नाम लेते रहिये फिर आपके लिये जो आवश्यक होगा स्वयं भगवान्‌की प्रेरणासे कोई सुना देगा, अपने आप सुना देगा। कोई सुनाना चाहे सुन लेना चाहिये, पर मुँह खोलकर किसीको कहना नहीं चाहिये। मनमें लालसा रखनी चाहिये। मनसे चाहे पर भगवान्‌से नहीं कहें। भगवान् तो सर्वसमर्थ हैं। मुझे और कोई भी डर नहीं हैं। यदि आप नाम छोड़ देंगे तो श्रद्धा बढ़नी कठिन है। दोनों बात खूब तत्परतासे होनी चाहिये और लौकिक स्वार्थका सर्वथा त्याग। .... की तरह यदि आप भी इस फेरमें पड़ेंगे तो फिर देरी होगी ही। दोनों कीजिये। एक लाख नाम जपका नियम और फिर नाम लेते हुए अध्ययन कीजिये। २५ अध्याय/ ३०अध्याय मन-ही-मन पाठ हो सकता है। अभ्याससे हो सकता है। मन-ही-मन पाठ, विचार और जीभसे नामका उच्चारण। नाम उच्चारण और पाठ एक साथ कैसे होगा? आपको मैंने बहुत ही अच्छी-से-अच्छी बात बताई है, अवश्य ही कुछ ढ़ककर। आप नाम लीजिये और हृदयसे भाईजीके हाथमें जीवनकी बागडोर सौंपनेकी सच्ची लालसा कीजिये फिर बतानेवाला गले पड़कर बता जायेगा। यों लड़कपन कीजियेगा। सुनाने सुननेका शौक रखियेगा तो यह भी ठीक ही है इसमें भी बहुत लाभ है, परन्तु सच्चा लाभ बहुत देरसे मिलेगा। एक दुजारीजीके सिवा मेरे ध्यानमें और कोई भी नहीं है जो सचमुच हृदयसे साधनाके तौरपर भाईजीकी बात सुनकर पूरा-पूरा लाभ उठा ले।

(९)

(माघ शु०८, सं० १९९८ (२४ जनवरी, १९४२) बाबाने श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीकी उपस्थितिमें श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीको लिखकर दिया—)

भाईजीको जिस दिन जसीडीहमें भगवत्प्राप्ति हुई थी, वह प्राप्ति और आजकी प्राप्तिमें आसमान-जमीनका अन्तर है। वह तो त्रिदेवोंमें सर्वोच्च एक देवके दर्शन थे। इसके बाद जो दर्शन हुए—वह जो उनकी स्थिति थी वह ऐसी थी, जैसे ध्रुवको भगवद्दर्शन। इसके बाद और भी अवस्था ऊँची हुई, श्रीकृष्ण आये। और फिर भी ऊँची अवस्था हुई, युगल सरकार आये। फिर इसमें भी ऊँची अवस्था यह हुई कि श्रीराधारानीमें सर्वथा इनका अहंकार विलीन हो गया।

अर्थात् श्रीराधारानीके नित्य विग्रहमें ये लीन हो गये। यद्यपि यह अवस्था अनिर्वचनीय है, वाणी, बुद्धि, मनसे परेकी है पर जहाँतक विवेचन हो सकता है, वही बात शाखाचन्द्रन्यायसे कही जा रही है। वह अवस्था इतनी विलक्षण है कि जिस दिन हम लोगोंमेंसे कोई सचमुच भाईजीकी कृपासे गोपीभावकी साधना करके गोपी बन जायगा, उसी दिन वह ठीक-ठीक समझ सकेगा और फिर वह भी किसी दूसरेको समझा नहीं सकेगा। यह तो प्राप्तिकी बात हुई, पर साधनाके ऊँचे स्तरकी बात भी समझायी जा ही नहीं सकती, केवल एक ही उपाय है, उसका अनुभव करना साधनाके द्वारा, अस्तु, जो भी विवेचन है वह बाहरी है।

अब आप सोचें, भाईजीके राधारानीमें लीन होते ही स्वयं श्रीकृष्ण इस पाञ्चभौतिकके धर्मी बन गये। दूसरे शब्दोंमें समझानेके लिये कह सकता हूँ कि मान लें, जैसे पाञ्चभौतिक ढाँचा दीखता है, उसके द्वारा जो व्यवहार होता है, वह तो सर्वथा उसी ढंगसे हो रहा है कि भगवान् स्वयं श्रीकृष्ण उसके अन्दर श्रीराधाकृष्णके रूपमें अभिव्यक्त हैं, और फिर उनकी सर्वसमर्थताशक्तिके कारण एक ही समय भाईजीके साथ (श्रीराधारानीके साथ) सर्वथा दिव्य सच्चिदानन्दमयी लीला करते हुए भी जड़ जगत्‌के व्यवहारकी भी रक्षा करते हैं। एक ही समयमें जब कि भाईजी रेडियो सुन रहे हैं, लोगोंकी दृष्टिमें यह बात रहेगी, वे रेडियो बड़े चावसे सुन रहे हैं, पर ठीक, उसी क्षण एक सर्वथा सच्चिदानन्दमयी लीला वहाँसे प्रकट रूपसे चल रही है। उस लीलामें और आपमें इतना ही व्यवधान है कि पाञ्चभौतिकका पर्दा पड़ा हुआ है। जिस प्रकार समस्त वृन्दावनकी लीलाका एक चित्र खींचकर उसे एक मिट्टीके बर्तनसे ढँक दें, तो मिट्टीके बर्तनके भीतरका रहस्य जिसे मालूम नहीं है, उसको यही दीखेगा कि मिट्टीका पात्र है, भीतर क्या है वह जान ही नहीं सकता। वैसे ही जिसे भाईजीके रहस्यका पता नहीं, वह जान ही नहीं सकता कि इस पाञ्चभौतिक ढाँचेसे जो आवाज आती है—भाया दूलीचन्द, दवाई ला तो। यह आवाज सर्वथा श्रीराधाकृष्णकी अचिन्त्य दिव्य सर्वसमर्थताशक्तिके कारण प्रारब्ध व्यवहारके लिये उनके द्वारा कही गई है, और ठीक उस समय कही गई है कि जिस समय एक विलक्षण लीला वहाँ चल रही है। शब्दमें ताकत नहीं कि मैं समझा सकूँ, मेरी बुद्धि जिस बातको ठीक समझ रही है, वह वाणीमें आ ही नहीं सकती। वह तो सर्वथा उनकी कृपासे ही संभव है। आप नीचे हैं, ऊँचे हैं यह प्रश्न नहीं है,

प्रश्न है कि मैं सोचकर भी उसे ठीक-ठीक भाषाबद्ध नहीं कर पाता तो क्या करूँ। अस्तु, ऐसा समझें कि समस्त भूत, भविष्य, वर्तमानकी लीलाके आधारस्वरूप जो श्रीराधाकृष्ण हैं, वे स्वयं इस ढाँचेमें पाँच-सात वर्ष पहलेसे अभिव्यक्त हो गये हैं और तबतक रहेंगे जबतक यह पाञ्चभौतिक ढाँचा चलेगा। उसमें होगा क्या कि जिसकी भावना जैसी है उसीके अनुरूप प्रतीति होगी। वेनीमाधव चाहें तो इन्हें वहाँ श्रीसीतारामके रूपमें दर्शन होगा, क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण ही राम हैं और राधारानी ही सीता हैं। ठीक-ठीक साधना पूरी होते ही इस ढाँचेकी जगह वह दिव्यलीला ही दीखेगी। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके अवतारमें और यहाँकी स्थितिमें यह अन्तर है कि अवतार-कालमें जो अवतरण होता है, वह पाञ्चभौतिक ढाँचेका आधार लेकर नहीं होता, वह होता है सर्वथा आत्ममायाकृत, जहाँ पाञ्चभौतिकका सम्बन्ध नहीं है। जो योगमायाका पर्दा है, वह भी पाञ्चभौतिक पर्दा नहीं है। अतः यहाँ जो अवतार है उसे आप प्रकारान्तरसे स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका अपनी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधाके साथ आवेशावतारके रूपमें हुए हैं, ऐसा समझें। आजसे पाँच-सात वर्ष पूर्व अवतरित हुए हैं और पाञ्चभौतिक ढाँचेके प्रारब्धशेषतक यह अवतार रहेगा।

मेरी यह धारणा है, तुच्छ समझ है कि श्रीराधारानीके साथ अभेद बिरले किसी-किसी महापुरुषका ही होता है, जिसका उदाहरण अबतक केवल महाप्रभु है, और कोई मेरी दृष्टिमें, शास्त्रमें या आधुनिक सन्तोंमें नहीं है। सारांश यह है कि जिस क्रममें साधना बढ़ी उसी क्रममें ऊपर उठते-उठते भाईजी इतने ऊपर उठ गये कि स्वयं श्रीराधारानीका साक्षात्, जिसके लिये पद्मपुराणमें नारदजीसे स्वयं श्रीगोपीजनोंने कहा है कि इनके इस रूपका दर्शन ब्रह्मा एवं शंकरके लिये भी दुर्लभ है, उस रूपका दर्शन, नारद तुम्हें हुआ है, वह दर्शन भाईजीको हुआ और फिर भाईजी उसीमें लीन हो गये। अर्थात् भक्तका जो निर्गुण अहंकार होता है दासीका, सखी नर्म सहचरीका, सब छूटकर बिल्कुल राधारानीके साथ सायुज्य लाभ करके कृतार्थ हो गये। जो जीव हनुमानप्रसादके कलेवरका आश्रय करके ४०-५० वर्ष पहले पैदा हुआ था, वह मैं हूँ, इस अहंकारको सर्वथा, मैं राधा हूँ इस रूपमें विलीन करके श्रीराधारानीके आश्रित है, वह सर्वथा उस सच्चिदानन्दमय राज्यके द्वारा प्रकाशित होता है। उस वागेन्द्रियमें जो बोली आती है, उस चिन्मय राज्यकी बोली आती है। प्रत्येक इन्द्रियोंकी प्रत्येक चेष्टा, जिस चेतनके आधारपर हमलोगोंकी चलती है, अर्थात् आत्माके रहनेपर ही लिंगशरीरकी जो चेष्टा होती है, उनमें उस राज्यका प्रकाश आता है, जो सर्वथा पूर्ण सच्चिदानन्दमय है, जीवकी तरह अणु नहीं है। इसीलिये इनके सम्पर्कमें आनेवाले पुरुषका भी ऊँचे-से-ऊँचा उज्ज्वलतम भविष्य है।

भगवान्‌की सर्वसमर्थताशक्तिके कारण यह किसीको पता भी नहीं चलेगा। सुनकर भी विश्वास उसी मात्रामें होगा, जिस मात्रामें भजनके द्वारा, इनकी कृपा प्रकाशित होकर इस बातको ग्रहण करनेमें अन्तःकरण समर्थ हो सका है। यह मैं स्वयं अनुभव करता हूँ कि उत्तरोत्तर यह अनुभव विलक्षण होता जाता है। मेरी तुच्छ बातका, तुच्छ अनुभवका कोई मूल्य नहीं है, क्योंकि वह सच्चा अनुभव होता है तो कह ही चुका हूँ मेरा जीवन, मेरी पारमार्थिक स्थिति, भाईजीके प्रति मेरा व्यवहार जगत्‌के लिये आदर्श हो जाता, पर वह रत्तीभर भी नहीं हुआ तो फिर वे बातें ही बातें हैं, ऐसा ही मानना पड़ता है। अस्तु, कुछ भी हो। इतना लिखकर समझानेकी चेष्टा कर सका वह यही है, विश्वास कराना हमारे सारे (वशमें) नहीं है, यह श्रीराधाकृष्णके सारे (वशमें) है। जो वहाँ मेरे विश्वासके अनुसार चाहे वह अधूरा विश्वास ही क्यों न हो, वहाँ उस ढाँचेमें अभिव्यक्त है। इसीलिये सर्वज्ञता, सर्वसमर्थता, स्वयं भगवान् श्रीराधाकृष्णकी जो-जो बातें शास्त्रोंमें आजतक कही गयी है, कही जायँगी सबकी सब वहाँ प्रकट हैं। पर वह प्रकाशित होगा उसीके लिये, जिसका सर्वथा संशयहीन विश्वास होगा। थोड़ा-बहुत परिचय तो निश्चय मिल सकता है, यदि सच्चा श्रद्धालु बननेकी चाह करे। क्योंकि छिपाना तो उन्हें उसीके लिये है, जो अश्रद्धालु है, श्रद्धालुके लिये छिपाना है नहीं। उसकी श्रद्धा प्रकट करनेके लिये बाध्य कर देगी। उस सम्बन्धमें स्वयं भाईजी ऐसी-ऐसी बातें दो-तीन बार कुछ शब्दोंमें कह गये जिससे मेरे ऊपर यही असर पड़ा, असर ही नहीं पड़ा—बिलकुल समझमें आ गया कि भाईजीने जो स्थिति बतलाई है, उसको स्वयं प्राप्त हो गये हैं। दूसरे शब्दोंमें स्वयं राधारानीने दया करके बतला दिया कि जिसके चरणोंकी खोज कर रहे हो वह मैं स्वयं इस ढाँचेमें आ गयी हूँ। हनुमानप्रसादकी आत्मा तो मुझमें विलीन हो गयी है, उसकी जगह अब मैं अपने प्रियतम श्रीकृष्णके साथ हूँ। राधारानीके पास जाना चाहते हो, तो तुम तीन सालसे उनके पास हो, केवल पाञ्चभौतिकका पर्दा है, यह उठेगा समयपर। जिस प्रकार अवतार-कालमें श्रीकृष्णका विग्रह एक स्थानपर दीखकर भी

सर्वव्यापक है, दामबन्धन-लीलामें, विश्वरूप-दर्शनमें इसे समझा जा सकता है। वैसे ही एक देशमें सीमित-सा दिखनेपर भी वह सर्वव्यापक है। जिस क्षण आपको या किसीको सचमुच उसका दर्शन होगा, उस समय यह देशका प्रश्न ही नहीं रह जायेगा। वहाँका देश बिल्कुल चिन्मय हो जायेगा, जो सर्वथा अनिवर्चनीय है। भाईजीने एक बार मुझसे कहा था—दर्शन होते समय यह देश बिलकुल नहीं रहता, वह सर्वथा सच्चिदानन्दमय हो जाता है। आपका प्रश्न तो मैंने समझा है, इसके उत्तरमें यही बात समझें कि पाञ्चभौतिककी सीमामें तभीतक बाँध रहा हूँ, जबतक कि उस लीलाका दर्शन नहीं हो रहा है। क्योंकि वह लीला ही सर्वव्यापकतत्त्व है, वह आपके अन्तःकरणमें भी है, अणु-अणुमें है, पर वहाँ वह अभिव्यक्त है। भगवान् श्रीकृष्ण जैसे एक सौ पच्चीस वर्षके लिये, समस्त रूपोंमें सब लीलाओंमें व्यापक भी थे, वैसे ही प्राप्तिके दिनसे लेकर प्रारब्धके शेषतक श्रीयुगल सरकारकी सच्चिदानन्दमयी लीला उस ढाँचेका पर्दा लेकर सबके सामने अभिव्यक्त है। अभिव्यक्त होते हुए भी वह सर्वव्यापक है। पता नहीं समाधान हुआ कि नहीं। इसमें भी गोलोक है, पर अभिव्यक्त नहीं है।

बड़ी सुन्दर बात बतलाता हूँ। यही तो कराना चाहता हूँ। साध्य-साधन यही है, बार-बार कह चुका हूँ। आज सुबह बतानेकी स्फुरणा हुई थी। सोचा तो कई बार था। यद्यपि मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है। महात्माजीके पत्रके अनुसार तो केवल सूक्ष्मशरीरके चिन्मय हो जानेका प्रमाण मिलता है। पर एक बात ध्यानमें आयी—श्रीवृन्दावनतत्त्वपर विचार करते हुए। शास्त्रोंके प्रमाणसे एवं युक्तियोंसे पहचान मिलती है कि स्वयं जितने दिन अवतार रहता है, उतने दिनतक ही नहीं, वह स्थान सदाके लिये चिन्मय हो जाता है, इसीलिये व्रजवासी महात्माओंकी हजारों वाणियाँ, हजारों पद्य ही नहीं, ऋषिप्रणीत ग्रन्थमें भी अवतारका तिरोभाव होनेपर भी यह प्रमाण मिलता है सच्चिदानन्दमयी भू-रेखा? अतः वह जमीन तो मिट्टीकी है, वह चिन्मय हो गयी, तो फिर यह पाञ्चभौतिक ढाँचा भी तो चिन्मय ही होना चाहिये। क्योंकि पृथ्वीतत्त्वमें तो कोई अन्तर ही नहीं है। इतना तो शास्त्रीय प्रमाण मैं देख चुका हूँ कि भगवत्प्राप्त वैष्णवोंका पाञ्चभौतिक शरीर भी साधारण पाञ्चभौतिक नहीं होता। पर जैसे हरिदासजी, प्रकाशानन्दजी आदिके अतिरिक्त औरोंको तो जड़ ही दीखता है, वैसे ही भाईजीका यह पाञ्चभौतिक ढाँचा हो गया है दिव्य, पर वह अनधिकारीको जड़ ही दीखेगा, ऐसी धारणा कई बार मनमें हुई। इसे प्रमाणित करनेकी सामर्थ्य

तो हमारेमें है नहीं, पर थोड़ी देरके लिये मान लें। यद्यपि हमारे विश्वासके अनुसार तो इस पाञ्चभौतिक ढाँचेके शरीरके मैलका भी उतना ही माहात्म्य है कि जितना भगवान्के अवतार-कालके समयके व्रजरजका, इस समयका नहीं, उस समयके व्रजरजका। क्योंकि अवतार तो यहाँ भी है ही, पर न विश्वास हो तो क्या भगवान् विश्वनाथकी जो मूर्ति त्रयोदशीके दिन पीतलसे ढँक दी जाती है और उसपर जल चढ़ता है, तो श्रद्धापूर्वक भावसे जल चढ़ानेके लिये वही फल मिलेगा। मूर्ति ढँकी है तो क्या, है वह मूर्ति भगवान् शंकरकी। उसी प्रकार यदि पाञ्चभौतिकका ही चिन्तन होता रहा तो मेरे संशयहीन विश्वासके अनुसार उसे वही फल मिलना चाहिये जो फल प्रत्यक्ष लीला-चिंतनका है। क्योंकि वह प्रत्यक्ष लीलाका ही आवरण है, उसीका पर्दा है। हम नीच हैं, प्रभो! हमारी आँखें भीतर नहीं पहुँचती, पर्देके भीतर हम तुम्हें नहीं देख पाते। पर पर्देके बाहर तुम्हारे चरणोंमें फूल चढ़ा रहा हूँ, यदि सचमुच इस भावसे पूजा हुई तो मेरी तो धारणा है कि उसके अन्तःकरणमें निश्चय ही लीलाका उन्मेष ही हो जायगा।

(१०)

(भाद्र कृ० ६/९९ (सन् १९४२) रतनगढ़में श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीके प्रश्नपर बाबाने लिखा)

दो ही बातें समझमें आ रही हैं—(१) उत्कट लालसा लेकर मन-ही-मन भगवान्से प्रार्थना करें (२) किसी सच्चे संतका यदि समागम प्राप्त हो तो उन्हींके सामने हृदय खोलकर कहें कि कैसे भगवान्के प्रति मेरा आकर्षण होगा। ये दोनों ही बातें ऐसी हैं कि प्रत्यक्ष तुरन्त उसी क्षण कुछ-न-कुछ उसकी टाण अवश्य ही बढ़ जायगी।

कभी मिलकर प्रेमसे उनसे बातें करनेसे ही मन इतना अधिक उन्मत्त हो जायगा कि स्वयं आश्चर्य होने लग जायगा। बात ऐसी समझमें आती है कि वह लगन हमारे मनमें नहीं होती। लगन होनेपर और किसीको पता भी नहीं चलेगा पर मन निरन्तर व्याकुल रहता है, निराशा, दुःख, भोगोंसे घृणा यह हमेशा बनी रहती है। कहाँ जाऊँ, क्या करूँ, इस प्रकार और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। और फिर ऐसी स्थिति होते ही स्वयं भगवान् अन्तर्यामी रूपसे सहायता करने लग जाते हैं अथवा किसी संतको प्रेरणा करके उसके द्वारा उसकी मदद कराने लग जाते हैं क्योंकि ऐसा नहीं हो तब तो भक्त एवं भगवान्के प्रेममय संबंधमें ही त्रुटि पड़ जाय। ये यथा मां प्रपद्यन्ते ...... जितनी

व्याकुलता यहाँ होगी, उस अनुपातसे भगवान्‌के अन्त:करणमें भी व्याकुलता उत्पन्न होगी ही। अभी भी यत्किंचित् हम लोगोंके मनमें जो इस प्रकारकी लालसा उत्पन्न होती है उसका भी असर भगवान्‌पर पड़ता है। और वे इस मंद लालसाका भी जवाब देते हैं। परन्तु जबतक लालसा तीव्र नहीं होती, तबतक भगवान्‌का वह उत्तर ठीक-ठीक अनुभवमें नहीं आता और इसीलिये बेचैनी बनी रहती है।

आपने कहा था कोई बात करनी है। आपके लिये शायद यही ज्यादे अनुकूल पड़ेगा। असलमें बात तो क्या है, इसे भगवान् ही जानें, मुझे बिलकुल मालूम है नहीं। परन्तु ऐसा शास्त्र कहते हैं कि जो कुछ भी दीखता है, वहाँ पूर्णरूपसे भगवान् हैं। इसीका अनुभव करनेके लिये आवश्यकता होती है कि किसी एकके प्रति अपना भगवद्भाव स्थापित किया जाय। इसीके लिये शास्त्रमें गुरु परम्परा है, शिष्य अपने गुरुको ही भगवान् मानकर उनके चरणोंमें न्यौछावर होनेकी चेष्टा करता है, अवश्य ही वैसे शिष्य और गुरु दोनोंका ही अभाव-सा आजकल है। परन्तु भगवान्‌का तो अभाव नहीं ही है और संतका भी अभाव नहीं ही होता, शिष्यका ही अभाव होता है। देखें, केवल लालसा लेकर धैर्यपूर्वक साधकको प्रतीक्षा करनेकी आवश्यकता होती है, फिर उसकी आंतरिक लालसा ही भगवान्‌में, संतमें जो कि सर्वथा अभिन्न तत्त्व है—प्रतिविम्बित हो जाती है और उसीके अनुरूप क्रिया होने लग जाती है।

संत तो एक चेतन पदार्थ है और वहाँ सर्वथा सब रूपसे पूर्णतया भगवान्‌की अभिव्यक्ति रहती है। केवल ढाँचा, ढाँचा लौकिक लीलाके अनुरूप चेष्टा करता है, उसके अंतरालमें पूर्ण जो भगवान् है, वे ही काम करते हैं। क्योंकि वस्तुत: संतका अहंकार सर्वथा विलीन हो जाता है अथवा रहता भी है तो वह अहंकार कुछ ऐसी विलक्षण वस्तु है कि उसे अहंकार रखनेवाला साधारण प्राणी समझ ही नहीं सकता। अत: वहाँ भगवान्‌की पूर्ण शक्ति अभिव्यक्त रहती है। प्रत्येक मनुष्यके अंत:करणमें भगवान् अपनी पूर्ण शक्तिके साथ हैं तो अवश्य, परन्तु उसके एवं भगवान्‌के बीचमें अहंकारका एक पर्दा रहता है इसीलिये वहाँ सभी मनुष्योंमें भगवान् मौजूद रहते हुए अप्रकट हैं, पर संतका वह पर्दा हट जाता है तथा वह सर्वथा भगवन्मय बन जाता है, इसीलिये जबतक प्रारब्ध शेष रहता है, तबतक संतके रूपमें स्वयं भगवान् हैं यह समझना चाहिये। नहीं समझनेपर भी वह चीज तो ज्यों-की-त्यों है, पर जैसे दुर्योधन

साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णका दर्शनकर लेनेपर भी, उनके द्वारा बहुत बार सिखाये-पढ़ाये जानेपर भी श्रीकृष्णको भगवान् नहीं मानता था इसीलिये वह जीवनकालमें उनके सहवासका आनन्दका लाभ नहीं उठा सका, इसी प्रकार जिस दिन मनुष्य भगवान्‌को प्राप्त कर लेता है, उसी दिनसे उसकी जगह स्वयं भगवान् काम करते हैं, पर न माननेवालोंको उनके जीवनकालके सहवासका आनन्द बहुत बार कम प्राप्त होता है। अवश्य ही कल्याण तो संगमें आनेवाले प्रत्येक प्राणीका निश्चय, निश्चय, निश्चय ही हो जाता है। एकादश स्कन्धमें भगवान्‌ने स्वयं सत्संगकी महिमा बतलाते हुए तीस-चालीस भक्तोंका नाम गिनाया है। टीकाकारोंने सबका जीवन लिखा है कि किनको किनके संगसे कल्याणकी प्राप्ति हुई। उसके देखनेपर यह पता चलता है कि अधिकांशको तो उसी जीवनमें ही भगवान्‌की प्राप्ति हो गयी है, कुछको एक और जन्म धारण करना पड़ा है। इसी प्रकार आज भी संतकी महिमा वही है। कालके अनुसार मनुष्यकी श्रद्धा नीचे दर्जेकी हो गयी है परन्तु सत्य वस्तु भगवान् एवं संतकी महिमा थोड़े घट जायगी? वह तो त्रिकालमें एक-सी रहेगी। इसीलिये जो संत आज हैं, उनकी महिमा वही है, बिलकुल ज्यों-के-त्यों हैं, परन्तु उसका प्रकाश श्रद्धा नहीं होनेके कारण नहीं होता। पहले जमानेमें लोगोंकी सात्त्विक प्रवृत्ति होनेके कारण संतोंकी महिमाका उनपर प्राकट्य जल्दी हो जाता था, अब कुछ विलम्बसे होता है। इसमें हेतु संतकी शक्तिकी कमी नहीं है, हेतु है साधककी श्रद्धाकी त्रुटि। यह शंका हो जाती है कि फिर महाप्रभु चैतन्य आदि ऐसे संत हो गये हैं कि बिना भावके कारण ही सबको तार गये तो इसका जवाब असलमें तो मुझे मालूम नहीं, पर यह समझमें आता है कि उनके द्वारा भी जो लोगोंको प्रेमदान हुआ है, उसमें भी फर्क है तथा प्रेम प्रकाश भी सबके जीवनमें तुरन्त नहीं हुआ है। किसीको बहुत विलम्बतक साधना करनी पड़ी है, यहाँतक कि रामचन्द्रपुरीको तो उनके द्वारा भी प्रेम प्राप्त नहीं हुआ, क्योंकि उन्होंने अपने गुरुका अपमान किया था तथा एक बात यह भी है कि महाप्रभुके विषयमें तो यह मान्यता है कि वे स्वयं भगवान् थे। यह बात नहीं माननेपर भी एक बात तो शास्त्रीय ही है कि समय-समयपर भगवान्‌की विशेष कृपा होती है और उस कृपाके कारण ही संत लोग इस प्रकार बेरोक प्रेमका दान करते हैं। अब वह कृपा क्यों होती है, कब होती है, उसका क्या नियम है, इसे भगवान्‌के सिवा और कोई नहीं जानता। अस्तु, संत तो वही है और उनकी सामर्थ्य भी वही है परन्तु (१)

न तो भगवान्‌की प्रेरणा है कि वह चमत्कार दीखे और (२) न वैसे श्रद्धालु हैं कि जिनके कारण कम-से-कम उनके लिये तो चमत्कार दीख ही जाये।

आपकी ही डायरीमें शायद देखा है या कहीं दूसरी जगह मुझे याद नहीं पर कहीं देखा जरूर है। भाईजीने भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन होनेपर गायोंकी समस्यापर प्रश्न किया था जिसका जवाब उन्हें यह मिला कि अभी गौओंकी दुर्दशा और बढ़ेगी, इनके उद्धारका अभी समय नहीं है। अब आप ही सोचें भगवान्‌को क्या गायें प्यारी नहीं है। गोपाल होकर भी वे गायोंकी दुर्दशा करा रहे हैं कि अभी इनका समय नहीं आया है। उसी प्रकार भक्तोंके बीचमें बेरोक, बिना किसी भाव श्रद्धाके प्रेमदानका भी शायद कोई ऐसा ही रहस्य हो तो क्या पता कि जिसके कारण बड़े अपूर्व विलक्षण (तथा अतिशय शक्ति सम्पन्न क्या भगवान् ही जब संत हैं तो फिर उनकी शक्ति तो असीम है ही।) संतोंके रहते हुए भी इस प्रकारकी कोई घटना देखनेमें नहीं आती।

सारांश यह है कि संतकी शक्ति वही है और काम भी वहीं करती है, वही आगेका भी करेगी। पर अपनी ओरसे मनुष्यको यही चेष्टा करनी चाहिये कि हम उनकी कृपाको अनुभव कर सकें। और इसमें योग्यता केवल इतनी ही आवश्यक है कि संतके प्रति भगवद्भाव हो जाय।

मैं लिख रहा था दूसरी बात यह थी कि जड़ पत्थरकी मूर्तिमें भगवान् भावसे प्रकट हो जाते हैं फिर जहाँ पहलेसे प्रकट हैं, वहाँ दीख जाय, अर्थात् संतमें भगवद्भाव हो जानेपर उनमें मनुष्यको भगवान्‌का दर्शन होकर फिर सर्वत्र भगवान्-ही-भगवान् दीखने लग जायँ तो क्या आश्चर्य है।

(११)

(पौष शु० .... १९९९ बाबाने चुरूमें शिवदयालजी गोयन्दकाके कष्टसाध्य बीमारीके समय लिखकर दिया—)

देखें, अब वह गुरु परम्परा नष्ट हो गयी क्योंकि अधिकारी शिष्य एवं अधिकारी गुरुकी कमी होती जा रही है। पर आप प्रत्येक शास्त्रको देखें एक मार्गप्रदर्शक प्राय: सभी संतोंके जीवनमें रहते हैं। मेरी बात ऐसी है कि मुझे बार-बार दोनों—सेठजी और भाईजी ही याद आते हैं जो कि बड़ी सुगमतासे आपकी सहायता कर सकते हैं। यह बिलकुल ठीक है कि भगवान् पूर्ण स्वतंत्र हैं तथा सच्चा संत उनकी इच्छामें अपनी इच्छा मिला देता है पर जैसे निवेदन कर चुका हूँ कि संतसे बार-बार हृदयसे कहना खाली नहीं जाता क्योंकि स्वयं

भगवान् प्रार्थनाका उत्तर देना शुरू कर देते हैं।

देखें, मैंने जानबूझकर न तो भाईजीपर न सेठजीपर श्रद्धा की है। विश्वस्त सूत्रसे मेरे मनमें यह विश्वास जमाये गये है कि ये दो विभूतियाँ बड़ी विलक्षण हैं और मेरा बिलकुल संशयहीन विश्वास है कि आपका प्रेम भरा आग्रह बिलकुल आज इसी क्षण दोमें एक बात करवा दे सकता है।

(१) या तो आपका मन सर्वथा सब प्रकारकी चिन्ताओंसे मुक्त होकर बिलकुल भगवान्‌पर निर्भर हो जाय मनकी ऐसी दशा हो जाय कि विश्वास, इतना दृढ़ विश्वास उत्पन्न हो जाय कि ऐसा प्रतीत होने लगे कि जैसे भाईजी अभी शहरमें गये हैं थोड़ी देरमें आनेके लिये कह गये हैं वैसे ही भगवान् थोड़ी देरमें पधारेंगे।

(२) या बिलकुल साक्षात् दर्शन ही हो जाय क्योंकि सच मानिये मेरा ऊँचे-से-ऊँचा विश्वास जो कि हमारे पास है वह यह है कि सेठजी, भाईजी जो भी कह रहे हैं उस वाक्यका सम्बन्ध खास भगवान्‌के राज्यसे बिना व्यवधानके हैं। देखें प्रत्येक जीवके मुखसे अच्छा-बुरा जो शब्द निकलता है उसका सम्बन्ध रहता तो है भगवान्‌के राज्यसे ही पर अहंकारका एक परदा रहता है। मेरी दृष्टिमें ये दोनों ऐसे हैं कि जहाँ यह व्यवधान बिलकुल नहीं रह गया है। यह मैं किसीको विश्वास नहीं करा सकता। मैं स्वयं कुछ भी नहीं जानता यह मेरा भाव ही हो सकता है पर आप जब हमसे पूछेंगे तो फिर मैं वही कहूँगा जो आपके लिये सर्वोत्तम बात मेरे ध्यानमें जँच रही है।

रतनगढ़ राधा कार्तिक शुक्ला ८ ९९ (१)
देखें, एक चीज़ होती है, श्रद्धा और
दूसरी चीज़ है उन्मुखता।
श्रद्धा का रूप तो यह है कि भगवान् हैं,
उनकी प्राप्ति में ही जीवन की सार्थकता है, संत हैं,
उनसे प्रेम करने में ही एकमात्र जीवन की सफलता
है, इस बात पर संशयहीन विश्वास
अडिग विश्वास हो जाना। कल सूर्योदय
होगा, इस बात में जैसे आपको बिलकुल
संदेह नहीं है, किसी प्रमाण की ज़रूरत नहीं है
जो कहे कि कल सूर्योदय नहीं होगा,
उसे आप पागल बतावेंगे, ठीक इसी प्रकार
भगवान् एवं संत में तथा उनके प्रेम की प्राप्ति में
विश्वास होना ही श्रद्धा है।
दूसरी वस्तु है उन्मुखता और यह
है बड़े महत्व की चीज़। देखें, जब
भगवान् का अवतार होता है, उस समय
उनके श्री विग्रह में, तथा जिस समय
कोई संत धरातल पर हो, उसके प्रति
श्रद्धा की बिलकुल ज़रूरत ही नहीं है,
ज़रूरत है उन्मुखता की, क्योंकि वहाँ
वस्तुशक्ति बिलकुल अनावृत (प्रकट)
रहती है। अब आपका [illegible] जो प्रश्न है

(१२)

(श्रीगम्भीरचन्द दुजारीजीको बाबाने लिखकर दिया। रतनगढ़, कार्तिक शु० ८/९९)

राधा

देखें, एक चीज होती है श्रद्धा और दूसरी चीज है उन्मुखता। श्रद्धाका रूप तो यह है कि भगवान् है, उनकी प्राप्तिमें ही जीवनकी सार्थकता है, संत हैं, उनसे प्रेम करनेमें ही एकमात्र जीवनकी सफलता है, इस बातपर संशयहीन विश्वास, अडिग विश्वास हो जाना। कल सूर्योदय होगा इस बातमें जैसे आपको बिलकुल संदेह नहीं है, किसी प्रमाणकी जरूरत नहीं है, जो कहे कि कल सूर्योदय नहीं होगा उसे आप पागल बतावेंगे, ठीक इसी प्रकार भगवान् एवं संतमें तथा उनके प्रेमकी प्राप्तिमें विश्वास होना ही श्रद्धा है।

दूसरी वस्तु है उन्मुखता और यह है बड़े महत्वकी चीज। देखें, जब भगवान्‌का अवतार होता है, उस समय उनके श्रीविग्रहमें तथा जिस समय कोई संत धरातलपर हो, उसके प्रति श्रद्धाकी बिलकुल जरूरत ही नहीं है, जरूरत है उन्मुखताकी, क्योंकि वहाँ वस्तुशक्ति बिलकुल अनावृत (प्रकट) रहती है। अब आपका जो प्रश्न है

उसका स्पष्ट उत्तर यह है कि भाईजीको यदि आप संत मानें फिर इनमें श्रद्धा करनी ही पड़ेगी, यह प्रश्न नहीं है, क्योंकि यहाँ वस्तु शक्ति अनावृत है। भगवान् इस घड़ीमें भी है पर यहाँ अनावृत नहीं हैं, यहाँ आवृत हैं (ढ़के हुए हैं) यहाँ इस घड़ीमें जबतक आपकी श्रद्धा नहीं होगी तबतक इस घड़ीमें भगवान् प्रकट नहीं होंगे, पर संत जहाँपर आपको दीखता है, वहाँपर वह भागवती शक्ति, बिलकुल प्रकट रहती है, अतः बिना श्रद्धाके ही वहाँ प्रकट हो सकती है, पर उन्मुखताकी जरूरत वहाँ भी होगी ही। उन्मुखताका अर्थ है, उनकी ओर रूख हो जाना अर्थात् मनसे, बुद्धिसे, आत्मासे, वाणीसे, शरीरसे—अपने समस्त कणोंसे उस वस्तुसे जुड़ जाना। इनमें यह बिलकुल आवश्यकता नहीं होती कि उसके तत्त्वको जाना जाय, उसके रूपको

3

जाना जाय, वह इतनी आवश्यकता
होती है कि बिना जाने बिना समझे
ही उससे मन इन्द्रियों को जोड़ दिया
जाय, फिर सच मानिये, वह वस्तु
स्वयं उसमें ज्यों के त्यों उतर
जाती है। आपको विश्वास नहीं होगा
पर एक कोई नौकर मान लीजिये, भाई
जी के यहां आकर रह जाय, अब वह
इस बात को बिलकुल नहीं जानता कि
ये क्या है, पर यदि वह अपने मन
आदि समस्त इन्द्रियों को इनसे जोड़
देता है तो बिना जाने स्वयं भाईजी
की सारी शक्ति उसके अंदर उतर जायगी,
यही है वस्तु शक्ति की महिमा।
आग में विष्ठा डाल दीजिये, गंदी से
गंदी बू आने वाली विष्ठा भी ठीक
वही आग बनेगी, जैसी चंदन
की लकड़ी की आग होती है। उसी प्रकार
जहां वस्तुशक्ति अनावृत रहती है
अर्थात् अवतार विग्रह एवं संत के
रूप में जहां भागवतीय तेज बिलकुल प्रकट

जाना जाय, बस इतनी आवश्यकता होती है कि बिना जाने, बिना समझे ही उससे मन-इन्द्रियोंको जोड़ दिया जाय, फिर सच मानिये वह वस्तु स्वयं उसमें ज्यों-के-त्यों उतर जाती है। आपको विश्वास नहीं होगा, पर एक कोई नौकर मान लीजिये, भाईजीके यहाँ आकर रह जाय, अब वह इस बातको बिलकुल नहीं जानता कि ये क्या है, पर यदि वह अपने मन आदि समस्त इन्द्रियोंको इनसे जोड़ देता है तो बिना जाने स्वयं भाईजीकी सारी शक्ति उसके अंदर उतर जायगी। यही है वस्तु शक्तिकी महिमा। आगमें विष्ठा डाल दीजिये, गंदी-से-गंदी बू आनेवाली विष्ठा भी ठीक वही आग बनेगी जैसी चंदनकी लकड़ीकी आग होती है। उसी प्रकार जहाँ वस्तु शक्ति अनावृत रहती है अर्थात् अवतार विग्रह एवं संतके रूपमें जहाँ भागवतीय तेज बिलकुल प्रकट

है होताहै, वहां बस जुड़ने भरकी देर है
जुड़े कि काम बन गया। यही
बात आपको भाईजीके संबंधमें भी
सोचनी चाहिये। आप उन्मुख नहीं हुए,
जुड़े नहीं, नहीं तो आप ठीक उनके
समान बन गये होते।
अब आप शरीरसे तो अलग
जा ही रहे हैं, मन भी अब आपका इनकी
ओर उन्मुख नहीं रहकर पैसेकी ओर
उन्मुख होनेकी संभावना है ही, उनसे
जुड़ेगा ही। इस परिस्थितिमें, महाराज,
मैं क्या बताऊं। श्रद्धा नहीं, नहीं
सही, पर उन्मुखता
तो होनी ही चाहिये। मनसे वाणीसे
शरीरसे इनसे जुड़े रहने मात्रसे ही
बिना किसी श्रद्धाके ये आपको ठीक
अपने समान बना लेंगे। यह बिलकुल जरूरत
ही नहीं पड़ेगी कि भाईजीकी पारमार्थिक
स्थिति जानें, जानकर उसपर श्रद्धा करें।
जो हो, मैं क्या बताऊं, अत्यन्त
प्रेमसे आपने पूछा है, अत्यन्त प्रेमसे ही मैं

होता है, वहाँ बस जुड़ने भरकी देर है, जुड़े कि काम बन गया। यही बात आपको भाईजीके संबंधमें भी सोचनी चाहिये। आप उन्मुख नहीं हुए, जुड़े नहीं, नहीं तो आप ठीक उनके समान बन गये होते।

अब आप शरीरसे तो अलग जा ही रहे हैं मन भी अब आपका इनकी ओर उन्मुख नहीं रहकर पैसेकी ओर उन्मुख होनेकी संभावना है ही, उनसे जुड़ेगा ही। इस परिस्थितिमें महाराज, मैं क्या बताऊँ। श्रद्धा नहीं, नहीं सही, पर उन्मुखता तो होनी ही चाहिये। मनसे, वाणीसे, शरीरसे इनसे जुड़े रहने मात्रसे ही बिना किसी श्रद्धाके ये आपको ठीक अपने समान बना लेंगे। यह बिलकुल जरूरत ही नहीं पड़ेगी कि भाईजीकी पारमार्थिक स्थिति जानें, जानकर उसपर श्रद्धा करें। जो हो मैं क्या बताऊँ, अत्यन्त प्रेमसे आपने पूछा है, अत्यन्त प्रेमसे ही

जवाब दे रहा हूँ। जो उपाय था उसे तो आप जानबूझकर छोड़कर जा रहे हैं अब अंतिम उपाय केवल यही बच जाता है, मैं पहले ही कह चुका हूँ कि जहाँ हैं वही रहकर (१) नियमित रूपसे भाईजीसे जुड़नेका भी एकाध घंटा समय निकालेंगे, भाईजीके विषयमें जो कुछ सुना है, उसका एक लेख रूपमें आपके पास कुछ होगा ही, उसे पढ़ें। (२) नियमित रूपसे भगवान्से या भाईजीसे मन-ही-मन प्रार्थना प्रतिदिन करें, हे भगवान्! हे भाईजी! विषयोंके मोहमें पड़कर फँसा हुआ हूँ। आप स्वयं कृपा कीजिये, स्वयं कृपा करके ही आप मेरे अन्त:करणको अपने प्रेमसे भरिये। (३) जब-जब समय मिले, भाव बढ़े तभी-तभी पत्रके द्वारा इन्हें अपनी याद दिलाते रहें। इनके पावन अंत:करणमें अपनी स्मृति जगाते रहें चाहे इनका जवाब मिले या नहीं मिले। राधा राधा।

यह इतना सुंदर उपाय है कि
यदि ठीक ठीक यह विश्वास हो
जाय कि हमें पकड़े हुए हैं,
हमारा सब कुछ हो ही गया,
तो फिर सच मानिये, कुछ भी
किये कराये बिना ही वे
अवश्य अवश्य पकड़े हुए हैं,
और आपका सब कुछ
हो ही गया। अवश्य ही
इस विश्वास में कमी
नहीं आने पावे।
लाख कोई कहे, पर
एक क्षण के लिये भी
निराशा नहीं होने पावे,
फिर बिलकुल जिम्मेवारी
उनपर आ जाती है, वे सब
करेंगे ही।

यह इतना सुन्दर उपाय है कि यदि ठीक ठीक यह विश्वास हो जाये कि हमें पकड़े हुए हैं, हमारा सब कुछ हो ही गया, तो फिर सच मानिये, कुछ भी किये कराये बिना ही अवश्य अवश्य पकड़े हुए हैं और आपका सब कुछ हो ही गया। अवश्य ही इस विश्वासमें कमी नहीं आने पावे। लाख कोई कहे, पर एक क्षणके लिये भी निराशा नहीं होने पावे, फिर बिलकुल जिम्मेवारी उनपर आ जाती है। वे सब करेंगे ही।

पत्र (७)

असल बात तो यही है कि उनके
नचाये ही जगत के समस्त प्राणी
नाचते हैं। आप का वहाँ जाना
मेरे पास आकर पूछना, मेरा
जवाब देना, सब उनकी डोरी की
ही नाच है।
बात यह है, महाराजजी, जबतक
अहंकार रहता है, तबतक सुख दुःख
होता है, जिस दिन कठपुतली के
सामने खिलाड़ी एक बार आ जाता
है, फिर कठपुतली सचमुच
अपने को जान लेती है कि
मैं डोरी के सहारे नाच रही थी
बस आनन्द ही आनन्द
उसके लिये बच जाता है।

असल बात तो यही है कि उनके नचाये ही जगत्‌के समस्त प्राणी नाचते हैं। आपका वहाँ जाना मेरे पास आकर पूछना, मेरा जवाब देना, सब उनकी डोरीकी ही नाच है।

बात यह है, महाराजजी, जबतक अहंकार रहता है, तबतक सुख-दुःख होता है, जिस दिन कठपुतलीके सामने खिलाड़ी एक बार आ जाता है, फिर कठपुतली सचमुच अपनेको जान लेती है कि मैं डोरीके सहारे नाच रही थी, बस आनन्द-ही-आनन्द उसके लिये बच जाता है।

(१३)

(चुरूमें बाबाने शिवदयालजीको लिखा। पौष शु० १९९९)

असलमें हम लोग भगवान्‌की महिमा बिलकुल नहीं जानते, नहीं तो भगवान्‌को प्राप्त पुरुष, भगवान्‌के दर्शनोंका सौभाग्य जिन्हें प्राप्त हो, ऐसे पुरुषका क्या रुतबा, कितनी शक्ति होती है, इस बातकी कल्पना होते ही सारा दुःख मिट जाता, अणु-अणुमें भगवान्‌के दर्शन होते। मैं क्या कहूँ मेरी कोई स्थिति ऊँची होती तो शायद आपको विश्वास होता।

पर जगत्‌की दो दुर्लभ-से-दुर्लभ विभूति आपके सामने हैं आप चाहें तो अभी इसी क्षण लाभ ले सकते हैं। शास्त्रकी बातपर विश्वास कीजिये।

सातवँ सम मोहि मय जग देखा, मोतें संत अधिक करि लेखा।

बिलकुल यह बात सच्ची है। वास्तवमें संतकी महिमा भगवान्‌की ही महिमा है, पर भगवान् स्वयं अपना दर्शन करानेका यश संतोंके माथेपर ही लाद दिया करते हैं, यह सदाका नियम चला आया है। संतकी दृष्टिमें भगवान्‌से बड़ा कोई नहीं है, तथा साधककी दृष्टिमें भी भगवान्‌से बड़ा कोई नहीं है। पर जहाँ लीलामय स्वरूप भगवान्‌का है वहाँ भक्तके जिम्मे, भक्तके अधिकारमें सब कुछ है। यह अधिकारका बंधन प्रेमका है। पर यह इतना जबरदस्त है कि इसका नमूना आप स्वयं तो आज प्रत्यक्ष देख सकते हैं।

राम त्रिभुवन पति हों तो हो पर वे लक्ष्मणके भाई हैं त्रिभुवनपति नहीं। यही आनन्द संत दर्शनसे होता है, होना चाहिये।

(१४)

(पौष शु० २/९८ सायंकाल दुजारीजी, गोस्वामीजीसे)

श्रीसेठजी स्वयं बहुत ऊँचे महापुरुष हैं और उनका ऋण मैं चुका नहीं सकता, उन्होंने ही मुझे इस लायक बनाया है कि मैं भाईजीका यत्किंचित् कृपाका अनुभव करनेमें समर्थ हो सकूँ। सचमुच तीन साल तक उनके पास रहकर, भाईजीसे अलग रहकर मेरी दशा कैसी रही है, यह एक लम्बा इतिहास है और यह सब भगवत्प्रेरणासे ही हुआ, पर जो उनके साथ हैं, सभी सेठजी नहीं हैं। रामसुखदासजीपर मेरा बड़ा प्रेम है, उन्होंने एक गलती की, जिसका कि उन्हें पता नहीं। एक बार वे पता नहीं कहाँ, किसके सामने कह बैठे कि सेठजीका ही ध्यान करो। इस बातका बहुत बुरा असर कई व्यक्तियोंपर पड़ा है, जिसे ठीक-ठीक मुझे पता लगा है। बात रामसुखदासजीने बिलकुल ठीक कही है और सर्वथा लाभकी बात, सच बात कही, पर सेठजी पर जिनकी वैसी श्रद्धा नहीं है, उनके सामने तो इसका परिणाम बुरा ही सिद्ध हुआ। बिलकुल सत्य बातका दुरुपयोग हो गया। श्रीसेठजी जैसा महापुरुष भी बिरला ही होता है पर उनके श्रद्धालुओंके सामने भाईजीका स्थान गौड़ है। आप सच मानिये सेठजीको मैं बहुत प्यार करता हूँ, उनके सभी सत्संगियोंके ऊपर मेरी श्रद्धा है, पर किसीके सामने भूलकर भी भाईजीकी कुछ भी आलोचना नहीं करता। मुझे सेठजीसे कोई द्वेष हो, ऐसी कल्पना भी मेरे प्रति अन्याय होगा। पर जहाँ श्रद्धा प्रेमका प्रश्न उपस्थित होता है, वहाँ भाईजीके विषयमें जो मेरा भाव है, उसे मैं क्या करूँ। इतना होनेपर भी यदि मेरे सामने वे लोग भाईजीकी कुछ आलोचना करते हैं, तो मैं या तो चल देना चाहता हूँ अथवा सहन कर लेता हूँ। कभी-कभी सेठजीके प्रति जो मेरा ऊँचा भाव वास्तविक है, उसकी चर्चा करके उन्हें प्रसन्न करने लग जाता हूँ। सारांश यह है कि मैं बिलकुल नहीं चाहता कि उस गोष्ठीमें भी भाईजीकी उत्कर्ष स्थापनाकी चेष्टा किसीके द्वारा भी हो। गोवर्द्धनजीसे मुझे ऐसा भय मालूम पड़ता है कि वे मेरी इस बातका सरलतावश कहीं दुरुपयोग नहीं कर बैठें। उनमें एक ऐब यह भी है कि वे ऐसी भूल करके भी उसके लिये पश्चात्ताप नहीं करते तथा उनका स्वभाव कुछ ऐसा दीखा कि वे बातें मालूम होनेके बाद यह भी कह सकते हैं कि क्या हर्ज है लोगोंको मालूम होगा तो लाभ होगा, उन्हें यह विचार शायद कम होगा कि स्वामीजी बहुत चिढ़ेंगे। उनको पढ़नेके लिये लिख रहा हूँ प्रेमसे—हमसे तर्क भी करेंगे—पर मेरी बात सुनना चाहते हैं और उससे लाभ उठाना चाहते हैं, तो मैं यह नहीं कहता कि वे मेरे अनुगत हों, पर मेरी शर्त तो उन्हें माननी ही पड़ेगी। आप दोनोंके द्वारा यदि बात किसीपर प्रकट भी होगी, तो या तो भूलसे होगी अथवा जानबूझकर भी होगी तो मेरा विश्वास है कि आपके मनमें यह लज्जा अवश्य होगी कि स्वामीजीने मना किया था। पर उस अवस्थामें मैं समझूँगा कि श्रीकृष्णकी यही इच्छा हो गयी, ठीक है। यद्यपि वे भी जो करेंगे श्रीकृष्णकी इच्छासे ही करेंगे पर, उन्हें यह भी निश्चय समझना चाहिये कि यदि वे ऐसा मानें कि हमने श्रीकृष्णकी इच्छासे, लोगोंको लाभ होगा, इसलिये कहा है, तो यह भी उन्हें मानना चाहिये कि क्या मेरे मना करनेमें श्रीकृष्णकी प्रेरणा नहीं है। मैं बहुत ही हृदयसे चाहता हूँ, पर जबतक वे अपनी इस कमजोरीको दूर करनेके लिये तैयार नहीं हैं तबतक मेरा मन कुछ झिझकता है। आप या कोई भी निश्चय समझें, जिसे इन बातोंसे लाभ होनेवाला होगा, उसके पास अपने आप पहुँच जानेका ऐसा ही संयोग लग जायेगा। क्योंकि सर्वसमर्थ भगवान्‌के नियंत्रणमें ही सबकुछ हो रहा है। इसलिये उत्साहित होनेपर भी विचार धैर्य साथ रखना चाहिये। उनसे स्पष्ट कह दीजियेगा कि जितना दुजारीजीको, गोस्वामीजीको मैं मानता हूँ, उससे कम मैं नहीं मानता। पर उनकी दो कमजोरी अर्थात् एकान्तिक निष्ठाकी कमी (चाहे मेरी भ्रम धारणा हो) तथा दूसरी बातको बहुत जल्दी दूसरोंपर प्रकट कर देनेकी आदत, इन दो कारणोंसे मेरे मनमें स्वाभाविक संकोच। यदि वे सच्चे मनसे अपनी जानमें इन दोनों दोषोंको दूर करनेकी सच्ची नीयत रखें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मैं तो उसी दिन दिखला देता। और शायद वे मुझे थोड़ा भी और जोर देते तो मैं उसी दिन कह देता कि देख लीजिये, पर उन्हींके लाभमें कमी पहुँचेगी।

देखिये, राधारानीकी बात है, जगत्‌में किसीकी शक्ति नहीं है कि उसका दुरुपयोग होते देखा जायगा, वह भी उसके मंगलके लिये ही होगा। अपनी ओरसे हम लोगोंको अवश्य ही सावधानी रखनी चाहिये, फिर कोई पाप थोड़े ही कर रहे हैं, जिसके लिये रोने-पीटनेकी जरूरत।

इतनी बात बार-बार मैं दुहरा देना चाहता हूँ कि श्रीसेठजी भी जगत्‌की दुर्लभ विभूति हैं, पर मेरे लिये तो महादेव अवगुन भवन वाली बात है। जो भी उनके अनुगत हैं, उनकी चरणोंकी धूलि सिर माथे पर।

(१५)

(स्थान—रतनगढ़, तिथि—पौष शु०१३, समय—रात्रि, उपस्थिति—श्रीगोस्वामीजी, दुजारीजी, गोवर्द्धनजी)

राधा राधा राधा राधा राधा राधा राधा

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण

देखिये रत्तीभर भी हताश अथवा निराश होनेकी जरूरत नहीं है। जैसा संग अभी बन रहा है यदि यह नहीं छूटे तो फिर कोई दूसरा प्रश्न ही नहीं उठता। और शायद कोई भयानक कुसंग लग जाय तभी यह संग शायद छूटे, नहीं तो भाईजीकी कृपाकी रस्सीमें हमलोग एक बार बँध चुके हैं, अब शक्ति नहीं कि चाहनेपर भी चले जायँ। जायेंगे भी तो कुछ दिन घूम-फिरकर वापस आना पड़ेगा, रह ही नहीं सकते, क्योंकि रह रहे हैं, उनकी कृपासे, इसमें आपका रत्तीभर भी पुरुषार्थ नहीं है। वे देखेंगे, दूसरे शब्दोंमें किसीसे खेल करना चाहेंगे, तब कुछ दिनके लिये वह भले ही चले जाय, नहीं तो असंभव है, कोई जा ही नहीं सकता। अस्तु, जितना संग हो रहा है, उतना ही होता जाय तो फिर निश्चित समझिये, बिना किसी संशयके इस बातको मान लीजिये कि कम-से-कम ५-७ आदमी जो मेरी दृष्टिमें हैं, उनपर अपने आप भाईजीकी कृपा प्रकाशित होकर एक क्षणमें सारी कलुषता मिटाकर वे लोग भाईजीके सच्चे संगके अधिकारी बन जायँगे, तथा यदि भाईजी अपनी लीला पहले भी संवरण कर लें, तो उसके प्रारब्ध शेष रहनेतक उनकी सँभाल करेंगे। यदि थोड़ा भी उन्मुख हुआ तो फिर प्रत्यक्ष दर्शन देकर सम्हालेंगे नहीं तो अलक्षित रूपमें सम्हालेंगे। सारांश यह है कि कुछ व्यक्ति जो इस प्रकार (जैसा दुजारीजीने अभी भाव प्रकट किया है) भाईजीके प्रति भाव रखनेवाले हैं, वे चाहें कितने भी मलिन क्यों न हों, एक क्षणमें भाईजी अपनी अहैतुकी कृपासे उन्हें अपने साथ ले जानेके अधिकारी बना लेंगे। इनके लिये कुछ भी असंभव नहीं है, कोई परिस्थिति इनकी इच्छामें बाधा नहीं डाल सकती। जिस प्रकार श्रीराधाकृष्णपर कोई नियम लागू नहीं, वे सर्वस्वतंत्र है, वैसे ही इन पर भी कोई नियम लागू नहीं, रत्तीभर भी किसी प्रकारका बंधन नहीं है। ये चाहें सो ही कर सकते हैं। अतः इनके लिये एक क्षणमें किसीको बहुत ऊँचा अधिकारी बना देना हँसीका खेल है। आपसे उस दिन कह चुका हूँ, पद्मपुराण वाली बात। एक भक्तके लिये श्रीकृष्णने एक गोपीसे कहा—प्रियतमे! इसे अपने समान बना लो।

उसी क्षण उस गोपीने उसके साथ अभेद चिंतन करके एक क्षणमें उसे गोपी बनाकर उसे श्रीकृष्णके चरणोंमें बैठा दिया और वीणा देकर कहा—मेरे प्राणनाथको भजन सुनाया कर। इसी प्रकार अथवा इससे भी विलक्षण ढंगसे, भाईजी उन ५-७ व्यक्तियोंको एक क्षणमें, अपने समान बनाकर श्रीकृष्णकी सेवामें अपने साथ रख लेंगे, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। विश्वास इसीलिये कहता हूँ कि मैंने भाईजीसे ये बातें कभी पूछी नहीं, पर हमें संदेह नहीं है, बिलकुल रत्तीभर भी शंका नहीं है। हाँ, यह भय कभी-कभी अवश्य होता है, किसी ऐसे कारणसे, जिनके विषयमें यह नहीं कहा जा सकता, कि उन चरणोंमें क्या हेतु है, भाईजीको खेल करनेकी इच्छा हो जाय, किसीको कुछ दिन घुमाना-फिराना चाहने लग जाय तो फिर वह बिचारा कुछ देर बाद पहुँचे। यह लीला क्यों होगी, कुछ कहा नहीं जा सकता—इनमें विषमता है नहीं कि एकको करें और दूसरेको छोड़ दें। पर शास्त्रोंमें जय-विजय पार्षदोंकी बात आप सुनते हैं वैसे ही इनके द्वारा भी ऐसी लीला कोई हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं है। यदि नहीं हुई तो फिर वे ५-७ सबके सब सर्वोत्तम एक प्रकारकी ही गति अर्थात् जहाँतक वाणीकी सामर्थ्य है, मनकी पहुँच है, उसके अनुसार सर्वोत्तम पारमार्थिक स्थिति—भाईजीके अनुगत रहकर अनन्तकालके लिये, कभी भी समाप्त न होनेवाले समयके लिये, श्रीकृष्णकी सेवामयी लीलामें अधिकार कर लेंगे।

मैं जो बार-बार आप लोगोंसे अनुगत होनेके लिये कहता हूँ, उसका कारण अपनी समझमें मैंने यही सोचा है कि कहीं भाईजीकी कृपा शक्तिका दुरुपयोग होने नहीं लग जाय। कृपाशक्तिका दुरुपयोग होनेपर फिर साथ रखनेमें देरीके दंडके लिये शायद उसे अवश्य तैयार रहना चाहिये। अनुगतके सभी अपराध माफ हैं, उसके सभी अपराध, भाईजी अपना अपराध मानेंगे, अतः उसके लिये सर्वथा संशयहीन, निर्भय, भयहीन भविष्य, अत्यन्त मंगलमय भविष्य निश्चित है, पर उन ५-७ में जो अनुगत होनेकी चेष्टा प्रकाशित नहीं करेंगे, अनुगत हो जाना तो सर्वथा उनकी कृपासे ही होगा, पर चेष्टा, लालसा, हार्दिक उत्कण्ठाका प्रकाश अंतःकरणमें ही होना चाहिये। नहीं तो आप विचारें, विवेकसे विचारें, जो सर्वथा उनका अनुगत हो गया है, यदि उसे कुछ विशेष पुरस्कार नहीं मिले तो अनुगत होना एक व्यर्थकी चीज हो गयी। फिर तो सब धान बाइस पसेरी। फिर तो सर्वथा सर्वस्व न्यौछावर कर देनेवालेके लिये भाईजीने वही किया जो एक साधारणके लिये किया। यह भागवती नियम नहीं

है, यद्यपि वे हैं सर्वस्वतंत्र, कोई बंधन नहीं है, पर अपनी ही लीलाकी सांगोपांगता ठीक पूरी करनेके लिये, अनुगत एवं जो अनुगत नहीं है उसमें जल्दी एवं देरीका भेद प्रायः हो जाता है। यह ठीक है कि अंतिम क्षणतक अनुगत हो जाय तो फिर कोई बात नहीं क्योंकि वह अनुगतकी श्रेणीमें आ गया, फिर यह विचार नहीं कि वह इतने दिनसे अनुगत है, यह तो अभी हुआ है वहाँ कालका प्रश्न ही नहीं है, वहाँ सब वर्तमान काल है। अतः अनुगत होनेकी लालसा अवश्य जागृत करनी चाहिये। इसमें रत्तीभर भी कोई परिश्रम नहीं है। दुजारीजी एवं गोस्वामीजी मेरी इस बातको कई कारणोंसे कुछ ज्यादा समझ सकेंगे। इस पाञ्चभौतिक ढाँचेके भीतर इतनी विलक्षण वस्तु है कि जितनी श्रद्धा है, उससे अधिक श्रद्धाकी जरूरत नहीं है, केवल उन्मुख होनेकी जरूरत है। उन्मुख होते ही वह विलक्षण वस्तुगुण जो अत्यन्त स्पष्ट रूपसे वहाँ उस ढाँचेमें अभिव्यक्त है, स्वयं उसे अपने ओर चुंबककी तरह खींच लेगी। नहीं खींच रही है इसमें मेरी तुच्छ बुद्धिके अनुसार यही कह सकता हूँ कि श्रद्धा काफी है, पर उन्मुखता नहीं है। विषयासक्ति, पारिवारिक आसक्ति, लौकिक स्वार्थ बीचमें पड़ा है, वह कृपाके प्रवाहको रोक देता है। यद्यपि वस्तुगुण इतना अधिक है, कि जीत उसीकी होगी, ये सब उस कृपाके प्रवाहमें बह जायँगे पर जब कभी तक ये दोष हम लोगोंमें है, तो मानना ही चाहिये कि कृपाशक्तिके प्रवाहके संस्पर्शमें ये नहीं आये नहीं तो अबतक बह गये होते अस्तु। घबड़ाना नहीं है। उस दिनकी तरह फिर भी यही बात कहता हूँ कि अधिक-से-अधिक मन, वाणी, शरीरका संग करते चले जाइये। दुजारीजीका भाईजीका मानसिक संग बहुत ठीक होता है। यह एक सर्वोत्तम पद्धति है। दिन-रात उनकी बातका चिंतन करना। इसका बड़ा विलक्षण परिणाम होगा। **कृष्णं विदु परं कान्तं, न तु ब्रह्मतया मुने**—इसी नीतिके अनुसार, भाईजीके असली स्वरूपका ज्ञान नहीं होनेपर भी निश्चय ही बिना संदेहके इनका असली रूप सामने आ जायगा, उसे जानना नहीं पड़ेगा स्वयं वह ढाँचा जो है, जो इसके भीतर है, सब-का-सब स्पष्ट रूपसे दीखने लग जायगा।

दुजारीजीकी पद्धति सर्वोत्तम पद्धतियोंमें एक है, अवश्य ही इससे ऊँची एक पद्धति और है, जो शीघ्र-से-शीघ्र भाईजीके स्वरूपको सामने ला दे, पर वह साधना नये सिरेसे करनी पड़ेगी। पर उसकी हम लोगोंको कोई विशेष जरूरत नहीं है। जितना भाईजीके विषयमें सुन चुके हैं, वही काफी है, उसे बार-बार मनसे चिंतन करना, सर्वथा श्रद्धालुओंके बीचमें उसकी चर्चा करना

तथा अपना सारा विवेक, सारा धैर्य बटोरकर जबतक संभव हो, तबतक अधिक-से-अधिक भाईजीके पास रहना यही, कायिक, वाचिक, मानसिक संग है। यह करते-करते भाईजीके प्रति इतनी शीघ्रतासे आकर्षण बढ़ेगा कि मालूम होगा, मानो जादू होता जा रहा है। हठात् ऐसे विलक्षण ढंगसे भाईजी बीचमें प्रेममयी दृष्टि डालेंगे कि आप प्रेम विभोर हो जायँगे।

अभी उनका हँसना देखते हैं, उनके हाथका स्पर्श भी पाते हैं, आपको बहुत आनन्द मिलता भी है, पर वह आनन्द इतना असीम है तथा इस विलक्षण जातिका है कि अभी उसका दर्शन तो हुआ ही नहीं है। इन तीन कायिक, वाचिक, मानसिक चेष्टासे अंतःकरण उस आनन्दके अनुभवका अधिकारी बनेगा और फिर वह आनन्द उत्तरोत्तर बढ़ता ही जायेगा। उनका हँसना जो दृश्य, जो भाव, आज आपके सामने लाता है, उससे अत्यन्त कई गुणा अधिक पीछे लायेगा, उसकी कल्पना भी अभी नहीं हो सकती। पाञ्चभौतिक ढाँचेका महत्त्व अभी हमारे सामने उद्धरित नहीं हुआ है। आपको एक बात बड़े महत्त्वकी बतलाता हूँ। भाईजीके चरण रज, व्रजरजसे तनिक भी कम नहीं है। भाईजीके पास रहना व्रजवास ही है। बल्कि इससे भी कुछ ऊँचा है, जिसको कई कारणोंसे लिखना नहीं चाहता। व्रजका महत्त्व, जिन-जिन कारणोंसे हैं, उससे प्रबल कारण इस ढाँचेके अंदर अभिव्यक्त है। दुजारीजी एवं गोस्वामीजी कुछ अनुमान लगा सकते हैं। बिलकुल वह इतनी विलक्षण बात है कि बार-बार कहनेपर भी उसका थोड़ा भी अनुमान कठिन है। पर वह इतनी विलक्षण वस्तु है कि बस, कुछ कहना नहीं बनता। आजतक अभीतक लोगोंकी कल्पना भी जहाँ नहीं पहुँची है, वह ऐसी विलक्षण चीज है। और मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि उसमें असली स्वरूपका सचमुच ज्ञान, अर्थात् वह असलमें क्या है, इसका ठीक-ठीक ज्ञान होना मेरे बार-बार उस बातके कहनेपर भी नहीं होगा। वह तो केवल भाईजीकी कृपा सापेक्ष है।

भाईजीके विषयमें शास्त्रीय आधारपर चाहे जो भी सुन ले, कह लें, पर भाईजीकी पारमार्थिक स्थिति इतनी विलक्षण है कि सारे विवेचन वस्तुस्थितिकी छायाको भी स्पर्श नहीं कर सकते।

कहना यही है, जहाँतक आपकी ऊँची-से-ऊँची कल्पना पहुँचे, वहाँतक कल्पना करके भाईजीके चरणोंमें उत्सर्ग हो जाइये।

भाईजी सचमुच ही भक्तवाञ्छा कल्पतरु हैं। इसीलिये मैं कहता हूँ कि उनसे सर्वोत्तम माँग पेश कीजिये, उनके चरणोंमें प्रेम।

****

पूज्य बाबाकी लेखनीसे स्वानुभूतियाँ

भाईजीको बाबाने स्वानुभूतियाँ अपने हाथसे लिखकर दीं, वह आगे प्रस्तुत है—

(१)

राधेश

गीतातत्त्वांक निकलनेके बादकी बातें लिख रहा हूँ। आपपर विश्वास तो बहुत था, पर डर यह था कि आपको सुनाकर कह दूँगा तो आप कह दीजियेगा कि तुम्हारे अन्दर कामविकार होते हैं, इसलिये तुम अधिकारी नहीं हो, पर सोचता था, मेरे इस कामविकारका स्वरूप कैसे समझाऊँ? स्त्री मेरी भोग्य वस्तु है—यह भाव न तब था और न अब है, पर अब भी मेरे मनकी दशा विचित्र है, मैं सुन्दरी स्त्रीको देखता हूँ तो बराबर नहीं कभी-कभी यह मनमें आता है, देखो यह सुन्दर है, भगवान्ने इसे देहाध्यास भी ऐसा ही दिया है कि अपने वास्तविक स्वरूपके अनुरूप यह अपनेको देह समझती है। राधारानीका अंश होकर भी मैं तो पुरुषदेहमें हूँ, देहाध्यास भी है, पुरुषका है, मैं अभागा हूँ। फिर सोचता हूँ, यह तो पार्थिव शरीर है, गन्दा है, राधारानीमें तो देह-देहीका भेद नहीं है। यह तो पार्थिव सौन्दर्य ही वस्तुतः है नहीं, शरीर तो यहीं रहता है, राधारानीका अंश जबतक रहता है, तभीतक सुन्दर है, तो सुन्दर अंश है, यह शरीर नहीं—इस प्रकार घृणा और आकर्षणके भाव न जाने कितने रूपोंमें, कितने प्रकारसे अब भी, जब वृत्ति बहिर्मुखी रहती है तब कभी-कभी आते हैं। साथ ही यह बात स्फुरित होती है—मैं स्त्री होती। अस्तु, मनके इस स्टैण्डर्ड(standard)को लेकर एकाकी उस समय भी बढ़ रहा था। वैराग्य, रागका स्वरूप ही कुछ और ही मेरे लिये थे। अवश्य ही प्रारम्भमें तथा अब भी यही धुँधली चाह मेरे मनमें काम कर रही है कि प्रेम अर्थात् श्रीकृष्णके सुखमें सुखी हो जाना, मेरे जीवनमें उतर जाय। इसी इच्छासे प्रेरित होकर चाहे मनका धोखा भी इसमें सम्मिलित हो—अबतककी चेष्टाएँ लगन-बेलगनसे होती गयी हैं। कह ही चुका हूँ कि गौड़ीय साहित्यका मेरे ऊपर बहुत असर हुआ, क्योंकि मेरे मनके भावोंका, जो अपने-आप उदय हुए थे—समर्थक था। पढ़ते-पढ़ते सेवाका भाव प्रबल होता गया। पहले स्त्रीरूपमें कुछ अपने सुखकी वासना छिपी रहती थी, वह शिथिल हो गयी। फिर मनमें आया गुरु बनाओ, किसे गुरु बनाऊँ यह प्रश्न उपस्थित हुआ, बहुत नहीं सोचा, थोड़ा सोचकर मानसिक जगत्में बिना किसी विधि-विधानके श्रीरूपमंजरी देवीको गुरुरूपमें स्वीकार कर लिया। नाम जप तो करता ही था पर,

यह कहना भूल गया कि सर्वथा प्रारम्भसे लेकर अबतक जो हुआ है, हो रहा है, किया है, कर रहा हूँ, इन सबके होते समय, करते समय मेरे मनकी कैसी दशा है, इसे ठीक-ठीक समझ नहीं सकता। कभी उत्कट व्याकुलता, कभी ये बातें होती गयी हैं, पर अधिकांश क्या प्राय: सबमें, चाहे कृत्रिमभाव ही हो, कैसे श्रीकृष्णका हो जाऊँ, यह वासना कर रही है। अत: नाम-जप करते हुए अष्टकालीन लीला अथवा किसी प्रकारकी लीलाका कोर्स बनाकर सेवा करनेका विचार उत्पन्न हुआ। साथ ही पुरुषोत्तम-तत्त्व लेख नित्यकर्ममें शामिल हो गया था। रोज पढ़ता था, अब भी रोज पढ़ता हूँ और यही सोचता था और सोचता हूँ कि मैं तो राधारानीका एक अंश हूँ, एक क्षुद्रतम अंश हूँ, चाहे मेरा स्थान कुछ भी क्यों न हो, हूँ तो उसी धातुका। यह विचार व्याकुल करने लगा—लीलाका कोर्स कहाँ पाऊँ, किससे पूछूँ, कौन मुझे बतायेगा, कौन मेरी मानसिक अवस्थाको समझेगा। कोई मेरा पतन होनेका अनुमान करेंगे, कोई हँसेंगे। आपसे संकोच था। पैसे थे नहीं कि सब गौड़ीय साहित्य मँगाकर देखूँ—उसमें आशा थी कि लीलाका कोर्स प्राप्त होगा। एक दिन दोपहरमें आपके पास बैठा था, फिर उठकर चला आया। (गोरखपुरकी बात है) आपने मुझे बुलाया और पद्मपुराणकी बातें सुनायीं। मुझे बुलाकर सुनाया और कहा कि देखिये, आपको कुछ बातें सुनाता हूँ। थोड़ा सुनाकर आपने कहा—इसे आप पढ़ जाइये। मैं कुटियापर या आपके पास ही पढ़ने लग गया, उसमेंसे तीन अध्याय ऐसे मिले जो मेरे जीवनके प्राणस्वरूप हो गये। उसीमें एक अष्टकालीन लीलाका एक कोर्स अत्यन्त सुन्दर प्राप्त हुआ। उसमें शंकर भगवान्‌ने कहा—जैसे प्रकट लीलामें वृन्दावनमें विहार करते हैं, वैसे ही नित्य करते हैं। उनकी लीला, नित्यलीला चलती रहती है, यह श्लोक मुझे अत्यधिक प्यारा लगा। सोचने लगा—ऐ! आज भी, इस क्षण भी, इस समय भी वे लीला कर रहे हैं, मैं उन्हें देख नहीं रही हूँ (क्रियाका स्त्रीलिंग व्यवहार इसलिये कहीं-कहीं हुआ है कि मानसिक जगत्‌में मेरी प्रार्थना आदि सब कुछ इसी रूपमें होती है।) बार-बार यह श्लोक मनमें आता और अब भी आता है—

यथा प्रकटलीलायां पुराणेषु प्रकीर्तिताः।
तथा ते नित्यलीलायां सन्ति वृन्दावने भुवि॥

सोचता त्रिकालज्ञ सर्वथा सत्यवादी ऋषियोंके वचन हैं।

'नित्यलीलायां' और 'सन्ति' ऐसा प्रयोग है। शंकरके वचन हैं, नारदजी सुननेवाले हैं। तो आज भी इसी रूपमें, इसी प्रकार वे हैं, नित्य हैं, रहेंगे। इसको नारदजीने वृन्दादेवीके पास जाकर पूछा है, वृन्दाने लीलाका कोर्स बतलाया है। भगवान् शंकरने उससे यह भी कहा है कि अपनेको स्त्रीके रूपमें भावना करके तब इस लीलाके द्वारा सेवा करनी चाहिये। यह मेरे भावोंका समर्थक ही था। अतः साधना चल पड़ी, धीरे-धीरे, जल्दी-जल्दी, कभी कैसे, कभी कैसे, उसीके आधार पर मानसिक सेवा शुरू हुई, जीवनमें सफलताकी आशासे आनन्दित हो उठा। 'हरे राम हरे राम' जप और मनके द्वारा सब काम करते हुए भी मानसिक सेवा चल पड़ी। चलती गयी। वृन्दावनके प्रति आकर्षण बढ़ता ही गया, पर साथ ही आपके प्रति। उस समय आपके प्रति यही सोचता था, मैं परा प्रकृति हूँ, राधारानीका अंश हूँ, तो भाईजी भी तो यही हैं। फर्क यह है कि मेरा देहाध्यास निवृत्त नहीं हुआ, मुझे सेवाका अधिकार नहीं है, भाईजी इस देहसे ऊपर उठ चुके हैं, सेवा पाकर कृतार्थ हो चुके हैं। अस्तु, गोरखपुरसे दादरी आये। वहाँ साधना ज्यों-की-त्यों थी, पर हठात् एक परिवर्तन हुआ। बाँकुड़ासे यह चौपाई याद आती रहती थी—'**एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥**' सोचता, सेवाके योग्य शरीर तो है नहीं, मन है, वाणी है। मनसे तो यथाशक्ति चेष्टा करता हूँ, पर वाणीसे क्या सेवा करूँ, कैसे वचन सुनकर श्रीकृष्ण प्रसन्न होंगे। हठात् यह विचार आया कि श्रीकृष्णको तो राधारानी सबसे अधिक प्यारी हैं, फिर उनका नाम उन्हें जरूर प्रिय होगा। इस प्रकारका स्पष्ट तो नहीं कुछ-कुछ ऐसे ही समर्थक भाव ब्रह्मवैवर्तके कई श्लोकोंमें प्राप्त हुए थे। अतः हठात् वह विचार इतना प्रबल हो गया कि तीन लाख नामका नियम छूट गया, जबरदस्तीसे छूट गया। आपकी सलाहकी परवाह न करके 'राधे-राधे कृष्ण' कहने लगा। फिर पीछे आपको कह दिया था।

राधासुधानिधि ग्रन्थमें एक अपूर्व श्लोक प्राप्त हुआ, जिससे यह विश्वास बढ़ा कि 'राधानाम' श्रीकृष्णको बहुत प्यारा है। अत: राधेकृष्ण-राधेकृष्ण जप और मानसिक अष्टकालीन सेवा चली। रतनगढ़का जीवन प्रारम्भ हुआ। हठात् एक पुस्तकमें यह श्लोक मिला जो 'रा' शब्द कहता है, उसे तो मैं अपनी उत्तमा भक्ति देता हूँ और 'धा' उच्चारण करते ही तो मैं सुननेके लोभसे उसके पीछे-पीछे चलता हूँ। यह स्वयं श्रीकृष्णके वचन हैं और राधारानीके प्रति। श्लोक ब्रह्मवैवर्तका है, पहले तो बहुत ढूँढ़नेपर भी यह नहीं मिला, पर एक विलक्षण ढंगसे एक दिन मुझे मिल गया। श्लोक तो ब्रह्मवैवर्तमें हालमें मिला, पर पहले ही बहुत कुछ विश्वास हो गया था कि उद्धत करनेवालेने झूठ नहीं किया होगा। दिल्लीमें महानन्दकी स्त्रीके इलाजके समय मथुराप्रसादजीके घरपर, 'श्रेय' में यह श्लोक उद्धृत देखकर बहुत विश्वास हुआ—अवश्य ही ये श्रीकृष्णके वचन हैं। फिर तो यह 'राधा' नाम साध्य और साधन हो गया। 'रा' कहते-कहते मुझे उत्तमा भक्ति प्राप्त हो जायगी और 'धा' अर्थात् 'राधा' से श्रीकृष्णकी श्रवणेन्द्रियकी तृप्ति होती है। इतनी तृप्ति होती है कि 'राधा' कहनेवालेके पीछे-पीछे चलते हैं, इतनी तृप्ति उन्हें किसी कार्यसे नहीं होती, क्योंकि पीछे-पीछे चलनेका एक उल्लेख केवल भागवतमें प्राप्त होता है, पर वह मर्यादाका है, यहाँ तो उससे ऊँची चीज है, इस प्रकारके भाव जाकर अनेकों विचार-तरंग उठकर 'राधा' नाम लेनेकी प्रवृत्ति बढ़ती ही चली गयी। पर सोचता था, मेरी राधारानी तो 'कृष्ण' नामसे प्रसन्न होंगी, अतएव 'राधेकृष्ण' नाम जीवनकी प्रिय वस्तु हो गयी। यह भाव कभी-कभी इतना बढ़ जाता है कि गोरखपुरमें इस बार विचार आया कि गोपी-देहसे सेवा करनेवाली बहुत-सी सखियाँ हैं, मैं स्त्री-शरीर गोपी-देहकी कामना करके तो आत्मेन्द्रिय-प्रीतिकी इच्छा ही करता हूँ। अत: अच्छा हो, दिव्य वृन्दावनधाममें तोता बन जाऊँ और निरन्तर 'राधेकृष्ण' कहकर, उड़कर प्रिया-प्रियतमको सुख पहुँचाऊँ। फिर सोचा—तोता पुरुष है, मैं तो सारी होऊँगी। कुछ दिनतक यह भाव इतना प्रबल रहा कि मनमें आता कि सारी देखनेमें कैसी होती है, अपने भावी शरीरको देख तो लूँ। मैंने मैना नहीं देखी है। सोचा है, अंग्रेजी डिक्शनरीमें चित्र मिल सकता है। पर मैनाका अंग्रेजी नहीं जानता था, गोस्वामीजीसे, माधवजीसे पूछा—वे लोग भी नहीं बता सके। इच्छा

हुई आपको मैना मँगानेके लिये कहूँ। उसे देखूँगा। फिर आया श्रीकृष्ण चाहेंगे तब दिखा देंगे, कुछ भी नहीं कहूँगा। आगे चलकर यह भाव ठंडा पड़ गया और और इस रूपमें हो गया—उनकी इच्छापर छोड़ दूँ, वे जैसी सेवा चाहें, जैसे शरीरसे चाहें, वही शरीर दें, उनके सुखके लिये सेवा है। सेवा करनी है। अस्तु।

इस प्रकार 'राधेकृष्ण' नाम और सेवा चलती रही। मौन लेनेके पूर्व कई कारणोंसे यह डर लगने लगा कि कहीं मेरा पतन न हो जाय, पर क्या करूँ, किसका आश्रय लूँ मेरा कौन है? ये बातें, ये विचार तभी उठते थे जबकि वृत्तियाँ बहिर्मुखी होकर मानसिक सेवाके जगत्से नीचे अधिक देर रह जाती थीं। ..... फिर, 'नामचिन्तामणिकृष्ण:' यह श्लोक ध्यानमें आया और भावोंके प्रवाह आ गये, सोचा 'कृष्ण' नाम चैतन्य है। इस रूपमें श्रीकृष्ण हैं मेरे पास, फिर भय किस बातका और 'न भक्त: प्रणश्यति' वचन झूठा नहीं है। 'राधा' उच्चारणके नाते उनका भक्त भी हूँ तो। यह भी आया, दादरीमें भी आता था और अब भी किसी रूपमें आता है कि गिर ही जाऊँगा तो क्या होगा, उनकी इच्छा यही है तो हो, अनन्त जन्म बीते, और भी अनन्त बीतें। पर गिरनेसे डर मालूम पड़ता था, यह भाव उस समय कुछ कमजोर हो जाता था, गिरनेकी इच्छा नहीं होती थी। अब गिरनेका वह भय तो मालूम नहीं पड़ता, पर हृदयको एक ठेस-सी लगती है कि यदि गिर जाऊँगा तो मुझे वह सेवा नहीं मिलेगी पर इधर यह भाव बहुत अधिक तेजीसे बहुत जोरसे दृढ़ होता जा रहा है कि जो कुछ भी होता है, श्रीकृष्ण ही करते हैं, उनकी इच्छा पूर्ण हो। न मैं देह हूँ, न नाम हूँ, मैं तो उनकी प्रियसे प्रिय वस्तु हूँ, यदि नारकीय देह देकर वे सुख पायें तो क्या हर्ज है? प्रार्थना भी कभी-कभी होने लगती है—ले चलो नाथ! जहाँ इच्छा हो, नरकमें इच्छा हो नरकमें ले चलो। यमदूतके रूपमें तुम मेरे शरीरको चीर-फाड़कर खाना चाहो, खाओ, अरे, यह फाड़ी जानेवाली देह भी तुम ही तो बनोगे। वर्तमानके विचारके सम्बन्धमें आगे लिखूँगा। अब मौनके पास लौट आता हूँ। ठीक याद नहीं, कई प्रकारके विचार करके यह तय किया कि अब 'राधेकृष्ण' ही बोलना है और कुछ नहीं। अत: डेढ़ सालसे 'राधेकृष्ण' जप और कीर्तन तथा पूर्ववत् मानसिक सेवा चल रही है।

अब तात्त्विक विचारके सम्बन्धमें भी कुछ लिखना जरूरी समझकर लिख रहा हूँ। श्रीकृष्णके वचन कहीं भी किसी शास्त्रमें

हों, बड़े प्यारे लगते हैं और मेरा जगत्में सबसे अधिक विश्वास आपकी बातोंपर होता, आपकी बात सबसे अधिक खींचती है। यह प्रश्न उठता ही रहता है, मैं कौन हूँ? विचार उठने लगते हैं और सोचता हूँ, चक्रधर और इस नामसे अभिहित शरीर तो मैं हूँ नहीं। इस नामसे मेरा सम्बन्ध, इस शरीरसे मेरा सम्बन्ध तो केवल उन्तीस-तीस सालका है, फिर कौन हूँ? मनसे उत्तर मिलता है—भाईजीने कहा है, उनसे बड़ा विश्वासपात्र और कौन है, मैं राधारानीका अंश हूँ। फिर इस शरीरमें क्यों हूँ, यह अध्यास क्यों है, यह ममता क्यों है? कभी मनमें आता है कि इस शरीरको भूल जाऊँ। जैसे पूर्वके शरीरोंको भूल गया, वैसे ही जीते हुए ही इस शरीरको भूल जाऊँ और राधा-रानीके चरणोंमें, जैसे मानसिक जगत्में हूँ, उसमें स्थित हो जाऊँ। शरीर छूट जायगा, मुझे पता नहीं चलेगा, मैं तो कभी अन्त न होनेवाले देशमें रहूँगा, उस सौभाग्यका कभी अन्त न होगा। वह दिव्य राज्य रहेगा, राधारानीके चरणोंमें रहकर अनन्तकालके लिये सेवा करती रह जाऊँगी। फिर क्यों नहीं इस जगत्को भूल पाती? भूलनेकी तीव्र चाह क्यों नहीं हो पाती? .... कभी विचार आता है, यह सामने क्या दृश्य देख रहा हूँ, यह जगत् क्या है? .... गोरखपुरमें आपने कहा था—श्रीकृष्णने समस्त जगत्को अपने अन्दर दिखलाकर, केवल कहकर ही नहीं, यह बतला दिया—सब कुछ वे ही हैं, सब कुछ उनके नियन्त्रणमें ही हैं ....यह बात बहुत जोरसे असर कर गयी। .... इसके बाद मानसिक जगत्में राधारानीके महलकी अटारीपर राधारानीके चरणोंमें बैठकर यह सोचा करती—वे जो श्रीकृष्ण इस समय दूध दुह रहे हैं, उन्होंने ही अपने अन्दर इतना बड़ा जगत् छिपा रखा है। संध्याके समय राधारानी अपने महलकी अटारीपर चढ़कर गोष्ठसे लौटकर आये हुए श्रीकृष्णकी शोभा निहारती है गायोंके झुण्डमें रहकर श्रीकृष्ण बार-बार राधारानीकी ओर देखते रहते हैं और राधारानीके पास बैठी हूँ, इस प्रकारका चिन्तन संध्याके समय होता है। उस समय यह विचार कई बार उठता है—मेरे हृदयधन! तुमने इतनी लीला रच रखी है, कभी-कभी व्याकुल होकर प्रार्थना होने लग जाती है कि नाथ! मेरे सामनेसे यह रूप हटा लो, इसी श्यामसुन्दरके रूपमें रह जाओ और सब भूल जाऊँ। कभी-कभी राधारानीसे प्रार्थना होने लग जाती है—राधारानी! तुम्हारा ही अंश हूँ, क्षुद्रतम ही सही, तुम्हारा ही हूँ, फिर एक बारके लिये मुझे बुला लो, ... इस प्रकार अनेकों प्रार्थना अनेक समय होती रहती है।

.... भागवत मेरा प्रिय ग्रंथ है, खासकर श्रीकृष्णके वचन जहाँ पढ़ता हूँ, वही मन खिंचने लगता है। कुछ दिन हुए यह विचार फिर आया कि यह आँखोंके सामने जो जगत् है, वह वस्तुतः क्या है? बहुत शास्त्रोंके वचनोंके संस्कारके आधारपर मन यह निर्णय देता कि यह सब श्रीकृष्ण ही हैं। .... इस प्रकार उधेड़बुन होते-होते एक दिन एक श्लोक एकादश स्कन्धमें प्राप्त हुआ—'मनसा वचसा—मनसे, वचनसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे जो ग्रहण होता है, यह सब मैं ही हूँ, मेरे सिवा कुछ है ही नहीं, ऐसा जानो। यह श्रीकृष्णका हंसरूपसे सनकादिकोंके प्रति उपदेश है। इस श्लोकने मुझे बहुत अधिक आकर्षित किया—फिर तो बार-बार यही सोचता कि वे ही श्रीकृष्ण जो मानसिक जगत्‌में है, इतने रूपमें दीख रहे हैं, पर राधारानी कहाँ हैं? जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ तो राधारानी हैं ही, क्योंकि राधारानी श्रीकृष्णकी आत्मा हैं। पद्मपुराण एवं स्कन्दपुराणवाले भागवत-माहात्म्यमें तथा कई जगहके ऐसे संस्कार मनमें हैं कि राधारानी श्रीकृष्णकी आत्मा है, श्रीकृष्ण राधा हैं, राधा श्रीकृष्ण हैं। अतः दो-चार दिनतक किसी जन्तु, प्राणी, मनुष्यपर दृष्टि जाती तो ऐसा चिन्तन होता है कि इसके अन्दर श्रीकृष्ण हैं और उनके हृदयमें राधारानी हैं। फिर यह श्लोक (मनसा, वचसा, दृष्टा .... अहमेव) इस रूपमें स्फुरित होने लगता कि जो देखती हूँ, जो सुनती हूँ, जो स्पर्श करती हूँ सब कुछ, सबके सब श्रीकृष्ण हैं। भूख लगती तब सोचता—भूखका अनुभव तो मनके द्वारा होता है, तो भूखके रूपमें श्रीकृष्ण ही आये हैं। तृप्तिके रूपमें श्रीकृष्ण ही आते हैं। फिर यह मन क्या वस्तु है? गीताका —इन्द्रियाणां मनश्चास्मि—यह श्लोक ध्यानमें आया—तो फिर मन भी श्रीकृष्ण है, तो यह कभी मलिन क्यों दीखता है, इसमें पहले गन्दी स्फुरणायें, विषयासक्ति क्यों है? भाव बढ़ जानेपर प्रार्थना कहने लगती—मनके रूपमें भी तुम्हीं हो नाथ! मेरे स्वामिन्! इस गन्दे रूपमें क्यों आते हो, मेरे सामने उसी श्यामसुन्दर-रूपमें परिणत हो आओ, तुम्हारा यह वीभत्स रूप मुझे अच्छा नहीं लगता .... फिर विचार आता—पतिव्रता किसीको प्यार नहीं करती, पतिको प्यार करती है .... हे नाथ! जिस रूपमें ..... हो, उसी रूपमें रहो ..... मैं जानती हूँ, मैं अबला हूँ, मेरेपर कृपा करो,

कृपामय! .... फिर सोचता—इस प्रार्थनाके रूपमें भी तो वे ही आये, बस-बस, मैं देख रही हूँ, अनन्त रूपोंमें देख रही हूँ, पर जानती नहीं थी, आज पहचान गयी। यह अन्तिमभाव आजकल निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। जब सेवाके समय मानसिक जगत्में अपनेको चिन्तन करता हूँ उस समय यह कभी-कभी विचार होता है कि जिस गोपी देहसे मैं सेवा कर रही हूँ, उस देहके दृश्यका भी अनुभव तो मनसे हो रहा है, मुझे हो रहा है, तो मनसे अनुभूत चीज तो श्रीकृष्ण ही हैं ...... तो क्या होगा? मालूम पड़ता है, यह होगा कि मेरा यह शरीर छूटते ही मैं उस देहमें प्रविष्ट हो जाऊँगी और श्रीकृष्णमयी होकर श्रीकृष्णमयी लीलामें अनन्तकालके लिये सम्मिलित हो जाऊँगी, यही परमतत्त्व है। बस, मनकी जहाँतक पहुँच है वही चरमतत्त्व है। फिर विचार होता है कि उस मानसिक जगत्से लौटकर इस सामनेके जगत्में क्यों आ जाती हूँ .... उस समय

राधेकृष्ण

इससे ऊपरकी बातें कल रातको १२ बजेतक लिखी थीं, कल लिखनेकी बहुत बात थी, पर आज क्रम नहीं सूझ रहा है, इतनी अधिक बातें—इतने अधिक भावोंकी तरंग है, जिन्हें लगातार कई दिनतक लिखकर भी समाप्त नहीं कर सकूँगा। वर्तमानकी मेरी दशा कैसी है, यह मैं इच्छा करनेपर भी नहीं समझा सकता। समझाने जाकर कुछ-का-कुछ लिख जाऊँगा। मलिन, नीरस, सरस, व्याकुलतामय भावोंका प्रवाह बहता रहता है, पता नहीं आगे मेरी कैसी दशा होगी। वर्तमानकी स्थितिका कुछ नमूना उपसंहारके रूपमें लिख रहा हूँ—

........सोचता हूँ—मैं लीला देख रही हूँ, स्वामीकी लीला देख रही हूँ। कबतक यह लीला बदलेगी—पता नहीं ...... समस्त बुरे-भले विचार, स्फुरणायें, भावके रूपमें वे मेरे सामने आ रहे हैं, जिस मनसे, जिस वाणीसे साधना हो रही है वह मन, वाणीकी

साधनाके रूपमें भी वही है, साधनाके फलके रूपमें भी वही आयेंगे। मैं केवल देख रही हूँ, मैं कौन हूँ? मैं उन्हीं राधारानीका, जो मानसिक जगत्‌में है, एक क्षुद्रतम अंश हूँ ...... पर इतनी ही लीला नहीं है, इससे भी परे है, क्या है, पता नहीं। .... वे अनन्त लीलामय हैं। किसी भी लीलाका एक कण भी अनुभव कर पाती तो निहाल हो जाती .... क्यों नहीं अनुभव करती हूँ? चाहती नहीं हूँ। चाहती क्यों नहीं हूँ? मोहित कौन कर रहा है? श्रीकृष्णकी प्रिय-से-प्रिय वस्तु मैं हूँ, मुझे श्रीकृष्णके सिवा और कौन मोहित कर सकता है? तो करो मोहित। नाथ! तुम सुखी होओ ...

कभी ये तात्त्विक विचार भूल जाता हूँ। अत्यन्त व्याकुल हो जाता हूँ। रोने लग जाता हूँ। अत्यन्त असहाया, निराश्रया अबलाके रूपमें अनुभव करके रोने लगता हूँ। प्रार्थना करता हूँ—तुम्हारे सिवा मेरा और कोई तो नहीं है, कौन मेरी सुनेगा ...... मेरे सामनेसे यह दृश्य हटा लो। मुझे राधारानीके पास पहुँचा दो, बस इतना ही ...... कभी-कभी प्रार्थना करता हूँ—मेरे नाथ! मेरे मनमें विरहकी आग जला दो, बस, निरन्तर अनन्तकालके लिये तुम्हारे लिये रोता ही रह जाऊँ। .... कभी कहता हूँ राधारानी तो सर्वथा तुम्हारे प्रेममें विभोर रहती है, सरलताकी चरम सीमा हैं। सर्वज्ञता आदि गुण उनमें है या नहीं, पता नहीं। एक बारके लिये उन्हें मेरी याद दिला दो, तुम्हें मेरी अवस्थाका पता है।

.......कभी सोचता हूँ, वे सर्वज्ञ हैं, सर्वसमर्थ हैं, हमारे सुहृद हैं, हमारे स्वामी हैं, मैं उन्हें अत्यधिक प्यारी हूँ—बस आनन्दमें भर जाता हूँ, आनन्दकी बाढ़ आ जाती है। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो, कहकर शान्त हो जाता हूँ।

.... महाप्रभुने अपने जीवनमें शिक्षाष्टकमें **'आश्लिष्य मां पादरतां'** श्लोक कहकर उसकी व्याख्या की है। कृष्णेन्द्रि-प्रीतिकी कामनाके स्वरूपका उच्चतम वर्णन है। **'एइ राधार वचन विशुद्ध प्रेम लक्षण आस्वादाय गौरराय'** पढ़कर सोचता हूँ—राधारानीका यह प्रेममय स्वरूप कितना उच्च है, मैं अंश हूँ, एक कण भी मुझमें आ जाता तो मैं कृतार्थ हो जाता। 'गोपीभावकी साधना' शीर्षक लेखमें अपने लिखा है कि गोपियोंका हृदय यही पुकारा करता है .....। सर्वस्व अर्पणका उच्चतम चित्रण है। सोचता हूँ, ऐसा भाव तो कुछ-कुछ मेरा है, पर है ऊपरी, यदि भीतर उतर जाता तो निहाल हो जाता। ये बातें बहुत पहले मेरे मनमें आती थीं। मैंने आपके लेखोंको, महाप्रभुके

जीवनको बहुत बार पढ़ा है। सम्भव है, ऐसे संस्कार उद्‌भुत होनेमें यही हेतु हुए हैं, पर जब मैंने महाप्रभुकी उस श्लोककी व्याख्या तथा आपका वह लेख पढ़ा तो मालूम हुआ ठीक-ठीक मेरे अन्तर्हृदयके भावोंका चित्रण हुआ है। 'आमि कृष्णपददासी' महाप्रभुकी यह व्याख्या तथा आपके उस लेखका कुछ अंश—उन-उन भावोंके उच्चतम चित्रण हैं, उन्हें पढ़कर कभी-कभी इतने ऊँचे त्यागपूर्ण समर्पणकी भावनामें तन्मय हो जाता हूँ कि कोई दुःख ही नहीं रह जाता। .....

...... जब बाह्य वृत्तियाँ होती हैं तो कभी याद आता है 'आश्वचाण्डाल-गोखरम्' सबको प्रणाम करो। सोचता हूँ, मेरे श्रीकृष्ण ही, मेरे स्वामी ही इन रूपोंमें है .... वे प्रणाम करानेके लिये कहते हैं ..... कुत्ते, गदहे, बैल, साँड़ पर दृष्टि जाती है, सोचते-सोचते अपनी कुटियामें चला आता हूँ। कभी-कभी अत्यन्त व्याकुल होकर पूछता हूँ, एक बारके लिये आकर बता जाओ, नाथ! तुम्हीं हो, सर्वथा तुम्हीं हो अथवा कुछ फर्क है? तुम्हारी सेवा कैसे करूँ? फिर मन आता है सेवा शरीरसे होगी, मनसे होगी, वाणीसे होगी। मैं तीनों नहीं हूँ, इन तीनोंके रूपमें वे ही हैं। मैं तो देखूँगी, वे अपनी ही सेवा अपने-आप जैसी मर्जी हो करें। मैं देखती रहूँगी।

........कभी सोचता हूँ तुम किस बातसे प्रसन्न होगे, नाथ! मुझसे क्यों रूठे हो? बताओ नाथ! और कितने दिनतक यह नीरस जीवन, प्रेमशून्य जीवन, मलिन जीवन चलेगा? भर दो मेरे नाथ! मेरे हृदयको अपने प्रेमसे। उसमें डूबती-उतराती रहूँ।

...... तुमसे अलग क्यों हूँ नाथ? ...... फिर यह बात याद आती है—गोपियों! तुमसे अलग हूँ, तुम्हारे नयनोंका तारा होकर भी तुमसे अलग हूँ पर इसलिये अलग हूँ कि तुम निरन्तर, मेरा ही निरन्तर चिन्तन करो, तुम्हारी प्रत्येक वृत्तियाँ मेरेमें लग जायँ। मैं दूर हूँ, दूर रहनेपर प्रियतममें मन जैसा लगता है वैसा नजदीक रहनेपर नहीं लगता। यह उद्धवके द्वारा प्रेषित सन्देश है। सोचता हूँ, इसीलिये मुझसे अलग है, तो अखण्ड चिन्तन करूँ। बस, उन्हींका चिंतन करूँ। फिर क्यों नहीं कर पाती? यह मोह क्या है? कौन इसे मेटेगा? यह विचार आकर चिन्तनकी तत्परता बढ़ती है।

भागवत मेरा प्रिय ग्रंथ है, कुछ संस्कृत जानता ही हूँ। खासकर जो श्लोक प्यारे हैं उनकी अनेक टीकायें पढ़ चुका हूँ। पर भागवतांक निकलनेके बाद अब दूसरी

टीका नहीं देखता। सोचता हूँ, लिखा है शान्तनुजीने, पर भाईजीकी दृष्टि एक बार सब श्लोकोंके ऊपर पड़ चुकी है, उन्होंने एक बार देखकर ही इस अर्थको छापा है। बस, अब मेरे लिये यही प्रमाण है। उसीको पढ़ते-पढ़ते भ्रमरगीता पढ़ी—उसमें पढ़ा—जैसे स्वप्नमें मनुष्य अनेकों पदार्थ देखता है, वे मिथ्या हैं, वैसे ही मनुष्य जागृतके दृश्योंको स्वप्नकी तरह मिथ्या समझकर उससे उपरत हो जाय और मेरा साक्षात् करे। सोचा, श्रीकृष्णने कहा है और सो भी अपनी प्रियतमा गोपीजनोंके प्रति, भाईजीने यह अर्थ देख-भालकर छापा है। तो क्या स्वप्न देख रही हूँ? राधारानीके चरणोंके पास बैठी-बैठी शायद सो गयी और उसमें स्वप्न आने लग गये, ऐसी बात है क्या? पर मेरा यह स्वप्न कौन तोड़ेगा। मेरे नाथ! मेरा स्वप्न तोड़ दो—ऐसी प्रार्थना होने लगती है। फिर मनमें आता है, चाहे जागृतका दृश्य, चाहे स्वप्नका दृश्य—दोनोंको अनुभव तो मन करता है और 'मनसे अनुभूत वस्तु मैं हूँ' ऐसा श्रीकृष्णने कहा है। तो स्वप्न कहाँ है? यह तो श्रीकृष्णकी लीला है, उनकी माया है, वे ही हैं। तो तुम्हारी मर्जी नाथ! मैं तुम्हें प्यार करूँगी, मुझे तो तुम्हें प्यार करना चाहिये, तुम्हारे रूपको नहीं, रूप भयानक हो तो क्या मैं तुमसे प्यार नहीं करूँ?

.... इस प्रकारकी तरह-तरहकी बातें आती हैं कि कहाँतक लिखूँ। कभी-कभी मलिन संस्कार जाग उठते हैं। तो सोचता हूँ इस मलिन रूपमें आये हो, मुझे नरक ले चलनेके लिये, तो तुम्हारी जैसी मर्जी, तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। .... इस सम्बन्धमें भी अजब-अजब बातें आती हैं, कहाँतक लिखूँ।

आपके प्रति क्या-क्या भाव होते हैं, वह भी एक लम्बा इतिहास है। सुनकर आप खूब हँसियेगा, पर अभी मौका नहीं है। जीवित रहा, होश ठीक रहा और सबसे पहली बात है, वे चाहेंगे तो आपके प्रति भावोंको सुनाऊँगा, आज नहीं।

..........आज गोविन्दरामजीके यहाँ विचित्र दशा थी, ठीक-ठीक समझा नहीं सकता, आवश्यकता भी नहीं है।

आपके पास हूँ, सोचता हूँ, मुझे रखनेमें भाईजीका क्या स्वार्थ है? उत्तर सर्वथा कुछ नहीं। तो सर्वथा अपने स्वार्थसे हूँ? हाँ। तब छोड़ दूँ क्या? क्योंकि प्रेम तो त्यागमूलक होता है, पर इतनी अधिक ममता (अवश्य ही यह ममता विचित्र ढंगकी है) होती है, पर तरहके विचार उठते हैं कि आपको छोड़नेकी आशंका होनेसे काँप जाता हूँ। ...... प्रार्थना अवश्य करता हूँ, मेरे नाथ! तुम्हें नहीं रुचे तो छुड़ा देना, तुम सुखी हो नाथ, वही करो। कभी-कभी प्रार्थना करता हूँ, मत छुड़ाना नाथ। फिर प्रार्थना करता हूँ, तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।

शरीरका ढंग विचित्र चलता है। पता नहीं कबतक चलेगा। कभी-कभी सोचता हूँ ....लिखते-लिखते इस सम्बन्धमें कुछ न लिखनेकी इच्छा हो गयी।

इतना लिखकर भी अपनी वास्तविक दशा आपको समझा सका कि नहीं, पता नहीं। आजकल तो विचित्र ही ढंग चल रहा है, क्या होगा, पता नहीं।

ये बातें सुनकर पता नहीं आप घृणा करेंगे, प्रेम करेंगे या दया करेंगे। एकाकी प्रवाहमें बह रहा हूँ। कभी-कभी सोचता हूँ, कई बार सोचा, मैं इनके सुखका उपकरण हूँ। जहाँ जिस रूपमें रखना चाहें; उसी रूपमें रखें, यही मेरा सर्वश्रेष्ठ सुख है।

साधनाका स्वरूप वर्तमानमें क्या है, ऊपर बता चुका हूँ। लिखते-लिखते कुछका कुछ लिखा जानेके कारण बहुत काट-कूट हुआ है। क्रियामें स्त्रीलिंग, कभी पुलिंग, जैसा मनमें आता गया, करता गया हूँ। मेरे हृदयकी ओर देखते हुए घृणाके योग्य भी कोई बात हो तो दया कीजियेगा। क्योंकि श्रीकृष्णका प्रेमराज्य तो सर्वथा मन-वाणीके परेकी चीज है। अभी तो मैं मलिन जगत्के स्पर्शसे मुक्त नहीं हो सका हूँ, फिर प्रेमकी चर्चा तो विडम्बना है। पर भाईजी, मनकी यही दशा है। सर्वथा जिद्दी, उद्दण्ड होकर लगा था, अभी भी वही जिद चल रही है कि चाहे जो हो, वस्तुस्थिति जो है उसे ही पकड़ूँ। क्या होगा, पता नहीं। होश रहनेतक आपकी बात माननेकी लालसा अवश्य है, भाईजी, पर होता नहीं। क्षुद्रतम, मलिनतम समझकर भी प्रेम रखियेगा, मुझपर दया रखियेगा। इतना लिखकर समाप्त करता हूँ।

(२)

एक दिनकी बात है। मनमें आया कि मेरा नाम मंजुलाली है। कल्पना हो गयी उसी दिनसे। ठीक इसी भावमें कई बार भावित हो गया।

हाँ भाई, मैं तो गाँवकी ग्वालिन, न रूप, न यौवन, फिर तुम मुझे क्यों प्यार करते हो? बहन, तुम लोग जानती हो ये श्यामसुन्दर मुझे क्यों प्यार करते हैं। न रूप, न यौवन, फिर क्यों मुझे प्यार करें। राम-राम, क्या हो गया, मैं बावली हो गयी। हाँ बहन, सचमुच किसी कामकी नहीं रह गयी हूँ। दिनरात श्यामसुन्दरको देखती रहती हूँ। सखि, प्राण देने जाती हूँ। पर जलमें डूबनेपर मेरे दम नहीं घुटते, वहाँ देखती रहती हूँ कि श्यामसुन्दर खड़े हँस रहे हैं। कहते हैं—तू प्राण देने आयी है, मंजु, तू प्राण दे देगी फिर मैं कैसे रहूँगा? बहन, इसीलिये अब न मैं मर सकती हूँ, न जी सकती हूँ, क्या करूँ?

पर बहन, मुझे आखिर हुआ क्या? अरे, इस वृन्दावनमें भी कोई जादू है। सच, इसीलिये ऐसा हुआ, राम-राम, मुझे क्या मालूम था। बहन, मैं केवल दही बिलोना जानती हूँ, छाछ बनाना जानती हूँ, और कुछ नहीं जानती। सुखसे घरका काम करती थी। रानी मुझे अतिशय प्यार करती थी। रानीने कहा—मंजु, पूजाके लिये थोड़ा फूल ले आ। बहन, मैं फूल तोड़ने गयी, किसीने मधुर स्वरमें कहा—मंजु! सावधान! इस वनमें जो फूल तोड़ता है, उसपर मेरा अधिकार हो जाता है। वह मेरी संपत्ति हो जाती है। बहन, मैं चौंकी, किसने मना किया, पर मैं रानीके लिये फूल तोड़ने गयी थी। कड़ककर बोली—तुम कौन हो जी? किसीने हँस दिया, आवाज आयी, देखकर क्या करेगी, पर याद रखना, फूल तोड़ेगी तो फिर वही बात, समझी। बहन! रानीको देर न हो जाय, मेरी रानी हमारी प्रतीक्षा करती होंगी, यह समझकर मैंने फूल तोड़ लिये, अंचलीमें बाँधकर ले चलो। फिर वही मधुर हँसी सुन पड़ी—मंजु! तू फँस गयी।

बहन! पता नहीं था, फिर पीछे जान पायी वे श्यामसुन्दर ही थे।

बहन! क्या बताऊँ! जहाँ दृष्टि डालती हूँ वे मुझे दीखते हैं।

रोग हो गया है, पर कौन-सा रोग जानती नहीं। आँखोंमें श्यामसुन्दर, कानोंमें श्यामसुन्दर, रोम-रोममें श्यामसुन्दर। सचमुच इसने मुझे बर्बाद कर दिया। बहन, पता नहीं यह कैसे मनकी बात जान लेता है। मैं जो सोचती हूँ, बस वही जान लेता है। मेरी रानी हमें देखकर हँसती है।

एक दिन बहन, मै अपना बाल सँवार रही थी। फूलोंको गूँथ-गूँथकर उसमें लगा रही थी। देखती हूँ, पीछे श्यामसुन्दर खड़े हैं बोले—मंजु! तुम्हें बाल सँवारना आता नहीं, मैं बहुत अच्छा जानता हूँ, मैं सवार दूँ। बहन! मैं भागी, दौड़ती-दौड़ती रानीके पास आयी, मुँह छिपाकर रोने लग गयी। रानीने पूछा—मेरी प्यारी मंजु, तुम्हें क्या हो गया है? मैंने सब बातें सुना दीं। रानी हँसने लगी। बोली—वह बड़ा नटखट है, कोई बात नहीं और फिर मुझे प्यार करके हृदयसे लगा लिया। राम-राम, बहन, सच मैं आयी थी रानीकी सेवा करने, पर पता नहीं रानीकी क्या दशा है, कौन उनकी देखरेख रखता होगा? मैं तो श्यामसुन्दरके पीछे बावली हो गयी, न खा पाती हूँ, न सो पाती हूँ। कई दिन हो गये, सारा दिन, सारी रात जाग रही हूँ स्वप्न देखती हूँ श्यामसुन्दर आये हैं, मुसकराते हैं। कहते हैं—मंजु, झूला झूलेगी? मैं चौंक पड़ती हूँ। उठ जाती हूँ।

अच्छा! बहन, सच बताओ आखिर ये श्यामसुन्दर मेरे कौन होते हैं? मैं इन्हें क्यों प्यार करूँ? राम-राम, क्या बक रही हूँ? श्यामसुन्दर! मेरे जीवनधन! मेरे जीवन-सर्वस्व। सचमुच, मैं तुम्हारे पीछे बिल्कुल नष्ट हो गयी। जीवन गया, कुल गया, धर्म गया, सब गया। अच्छा हुआ, रखकर ही क्या करती। हाँ बहन, जहाँ श्यामसुन्दर नहीं, वहाँ जाकर करूँगी ही क्या? पर राम-राम, मैं सचमुच बावली हो गयी। श्यामसुन्दर तो वे खड़े हैं। पता नहीं, मुझे क्या हो गया है। माँ रोने लगी, वैद्यको बुलाया। बोली—देखो मेरी प्यारी मंजुको

क्या हो गया है। यह दिन-रात बकती रहती है। हाय! मेरे घरका सब कामकाज यह करती थी, दिन-रात मेरी सेवा करती थी, मेरी बहू राधाकी सँभाल करती थी, पर बिलकुल बीमार हो रही है। सखि! वैद्य भी यही श्यामसुन्दर ही आकर बन गये थे, माँने उन्हें नहीं पहचाना। उन्होंने मेरी नाड़ी देखकर कहा—हाँ जी, यह रोग बड़ा कठिन है, यह छूटना बड़ा मुश्किल है, यह मिटता तो बिलकुल नहीं। हाँ बीच-बीचमें दब जाया करता है। अच्छा बूढ़ी! यह बता, सबसे अधिक किसको प्यार करती थी?

माँ बोली—मेरी बहू राधाको।

वैद्य बोले—अच्छा तो देख, दो काम करना। तुम्हारी बहूको चाहिये कि जब जहाँ जानेको कहे, वहीं चली जाय और तुम इसके किसी काममें बाधा मत देना, नहीं तो यह और भी बीमार हो जायगी। बहन! रानी अंचलके ओटमें हंस रही थी। वैद्य चले गये। मैं रो पड़ी, रानीकी गोदमें सिर रखकर रोने लगी। बोली—रानी, मैं पगली हो गयी हूँ। अब क्या होगा, कौन तुम्हारी सँभाल करेगा? रानीने मुझे हृदयसे लगाकर कहा—मेरी प्यारी मंजु! तुम्हारा यह पागलपन ऐसा-वैसा नहीं, यह विरले किसीको अनन्त सौभाग्यसे ही प्राप्त होता है। जगत्‌के प्राणी इसके लिये तरसते हैं। यह कहकर रानी मुझे हृदयसे लगाकर चूमने लग गयी।

सखि! रानी भी हँसती है, श्यामसुन्दर भी हँसते हैं, पर मैं दिन-रात सूखी जा रही हूँ। पता नहीं, बहन, मुझे क्या हो गया है?

इस प्रकार बेसिर-पैरकी कल्पनाएँ बढ़कर माथा बिलकुल गरम-सा हो जाता है। लिखनेमें तो वह बात बहुत कम आती है। कभी कुछ, कभी कुछ, कभी-कभी तो दिनभर।

और कभी-कभी एक दो दिन शांतिसे जप हो रहा है। कभी कुछ।

कई बार सोचा आपसे पूछूँ? फिर मनमें आया कि जानकर छोड़ूँ नहीं, छूट जाय, स्मृति ही न रहे तो फिर ....। इससे यह न समझेंगे कि वस्तुत: मेरा मन इन बातोंका अधिकारी है। मेरे अंदर तो आपकी जो कसौटी है—काम-विकारशून्यता, वह बिलकुल है नहीं। बरबस मानो मुझे कोई खींच ले जा रहा है।

एक सलाह पूछनी थी। बात यह है कि मेरा नित्यकर्म कुछ फिक्सड (Fixed) है। उसमें होता क्या है, कुछ पाठ, कुछ खास श्लोकोंका मनन तथा यह भी नियम है कि भोजनके पहले इतना, फिर इतना। जपका कोई नियम एवं संख्या नहीं रह गयी है।

उस दिन संध्याकी बात है। आपसे कहा—भाईजी, समय कम, रास्ता बहुत ज्यादा रह गया है। आप बोले—महाराजजी, वाहन इतना तेज है कि उसके मुकाबलेमें रास्ता कुछ नहीं। पर ख्याल ही नहीं कि रास्ता तय करना है। एक हलकी-सी निराशा इस बातसे मनमें आयी, पर फिर उसी क्षण उसी भावसे अपने-आप भावित हो गया। बाहर धोरे (बालूका टीला)में गया, मन-ही-मन इस प्रकार बकता गया—

क्या करूँ बहन! मैं आयी थोड़े थी, मुझे तो किसीने लाया है। हाँ जी, इसी तरह तड़पा-तड़पाकर मारनेके लिये लाया है। पर बहन, मर भी नहीं पाती। क्या करूँ, मरने देते नहीं, कई बार यमुनामें डूबने गयी .....

इस प्रकार उस दिन कई घंटे चलता रहा। बात यह पूछनी थी कि जब शान्त मन होता है तब सोचता हूँ कि क्या करूँ, इस नियमके बन्धनको छोड़ दूँ क्या? क्योंकि स्मृति हो जाती है, भिक्षाके पहले उस नियमको पूरा कर लेना है। फिर आँख खोलते ही भावांतर हो जाता है।

कोई बात नहीं, पर रोज-रोज यह असमंजस उपस्थित हो जाता है। फिर वह तो पूरा हो नहीं और एक बार यह छूटा कि छूटा। कभी तो पाठके अक्षर कुछ-कुछ ध्यानमें रहते हैं और मन वैसी कल्पनामें ही आधा लगा रहता है और कहीं भावान्तर हो जाता है। पर वर्षोंसे नियमके बन्धनको तोड़ते हुए यह डर लगता है कि कहीं मन धोखा न दे दे।

****

मनमें यह
आया कि भला बुरा जो भी मैं दूंगा,
वह अनन्त गुणा होकर मेरे पास ही
क्रियारूप में फलरूप में आजायगा।
आपने सत्संग में यह कहा था। सत्संग
में आपकी बात मेरे ऊपर वेदवाक्य
से भी ऊंचे स्तर के वाक्य के रूप में
असर करती है। प्रवचन सुनते-२ मैं
वहीं बैठा-२ उन भावों में बह
जाता हूं। व्रजप्रेम की चर्चा सुनकर
प्रेम की इतनी ऊंची सीमा में
जा पहुंचता हूं कि उस समय कुछ क्षणों के लिये
मालूम होता है कि सारी कलुषता दूर
होकर त्याग की चरमसीमा पर श्रीकृष्ण
ने मुझे पहुंचा दिया है। फिर धीरे-
भाव कम जाता है। उस दिन यह बात सुनकर
बहुत deep असर हुआ। मैं यदि श्रीकृष्ण
चर्चा का दान किसी को दूं तो वह
अनन्तगुणा होकर मेरे पास ही आजायगा। मैं
यदि भाईजी के प्रति श्रद्धामयी चर्चा का दान
किसी को दूं, तो वह अनन्त गुणा होकर
मेरे पास आजायगा। ओह! कितना
ऊंचा व्यावहारिक जीवन हो जाय!

(३)

मनमें यह आया कि भला बुरा जो भी मैं दूँगा, वह अनन्त गुणा होकर मेरे पास ही क्रियारूपमें फलरूपमें आ जायगा।

आपने सत्संगमें यह कहा था सत्संगमें आपकी बात मेरे ऊपर वेदवाक्यसे भी ऊँचे स्तरके वाक्यके रूपमें असर करती है। प्रवचन सुनते-सुनते मैं वहीं बैठा-बैठा उन भावोंमें बह जाता हूँ। व्रजप्रेमकी चर्चा सुनकर प्रेमकी इतनी ऊँची सीमामें जा पहुँचता हूँ कि उस समय कुछ क्षणोंके लिये मालूम होता है कि सारी कलुषता दूर होकर त्याग की चरम सीमापर श्रीकृष्णने मुझे पहुँचा दिया है। फिर धीरे-धीरे भाव कम जाता है। उस दिन यह बात सुनकर बहुत deep असर हुआ। मैं यदि श्रीकृष्ण चर्चा का दान किसीको दूँ तो वह अनन्त गुणा होकर मेरे पास ही आ जायगा। मैं यदि भाईजीके प्रति श्रद्धामयी चर्चाका दान किसीको दूँ, तो वह अनन्तगुणा होकर मेरे पास आ जायगा। ओह! कितना ऊँचा व्यावहारिक जीवन हो जाय।

५ दिन बाद मुझसे आप एवं गोस्वामी
जी मिले, कुछ भाई जी के संबंधमें बढ़िया
बात सुनाऊँगा। वचन देनेके बाद भावराज्य में
डूबा, लगातार ५ दिन तक आपके संबंधमें
तरह तरह की बात सोचता। मानसिक सेवा
में भी इस बातसे विघ्न होता, पर मन बरबस
चला जाता। सोचते २ स्वयं प्रवाह में बहने लगा।
अंय! ऐसी बात है; भाईजी इतने विलक्षण हैं!!
= ओह इस पांचभौतिक ढांचे के पर्दे के भीतर
हमारी राधारानी की लीला चल रही है। उस समय
= एक बार मानसिक जगत् में जाना और एक बार
आपके ~~आपके~~ पांचभौतिक ढांचे के भीतर।
सोचता-जो मेरा मानसिक दिव्य वृन्दावन का
राज्य है, वही भाई जी के पांचभौतिक ढांचे
के भीतर है, वही लीला चल रही है। ऐसी बात
ओह कितनी विलक्षण बात है। यहाँ तक भाव बढ़ गया
कि एक बार मन में यहाँ तक आया कि सब छोड़कर
आपसे प्रार्थना करके आपकी सम्मति लेकर आपके
पास ही बैठा रहूं, और राधारानी की लीला आपके
पांचभौतिक ढांचे के पर्दे के भीतर देखता रहूं।
मेरी उस समय की स्थिति एवं इस समय की स्थिति
लेखनी के द्वारा इच्छा रखने पर भी नहीं
समझा सकता।

(४)

मुझसे आप एवं गोस्वामीजी मिले, कुछ भाईजीके संबंधमें बढ़िया बात सुनाऊँगा। वचन देनेके बाद भावराज्यमें डूबा, लगातार ५ दिन तक आपके संबंधमें तरह-तरहकी बात सोचता। मानसिक सेवामें भी इस बातसे विघ्न होता, पर मन बरबस चला जाता। सोचते-सोचते स्वयं प्रवाहमें बहने लगा। अंय! ऐसी बात है! भाईजी कितने विलक्षण हैं!! ओह इस पाँञ्चभौतिक ढाँचेके पर्देके भीतर हमारी राधारानी की लीला चल रही है। उस समय एक बार मानसिक जगत्में जाना और एकबार आपके पाञ्चभौतिक ढांचेके भीतर। सोचता—जो मेरा मानसिक दिव्य वृन्दावनका राज्य है, वही भाईजीके पाँञ्चभौतिक ढाँचेके भीतर है, वही लीला चल रही है। ऐसी बात, ओह कितनी विलक्षण बात है। यहाँ तक भाव बढ़ गया कि एक बार मनमें यहाँ तक आया कि सब छोड़कर आपसे प्रार्थना करके आपकी सम्मति लेकर आपके पास ही बैठा रहूँ, और राधारानीकी लीला आपके पाँञ्चभौतिक ढाँचेके पर्देके भीतर देखता रहूँ। मेरी उस समयकी स्थिति एवं इस समयकी स्थिति लेखनीके द्वारा इच्छा रखनेपरभी नहीं समझा सकता।

(५)

रेलवेवाली घटना की बात सुनाकर आप अन्यमनस्कसे हो गये (सत्संगके बाद रातकी बात है) और भीतर चले गये। गोस्वामीजी बैठे रह गये सर्वथा इच्छा न रहनेपर भी बात चल पड़ी और कई बातें गोस्वामीजीसे कहीं तथा आत्मसमर्पण करनेके लिये, आपके हाथमें बिना विलम्ब जीवन सौंप देनेके लिये प्रोत्साहित किया, खूब किया।

(६)

अब भाईजी, आपसे क्या बताऊँ, क्या कहूँ? आपके विषयमें जो भाव तरंग उत्पन्न होते हैं, यदि वे स्थायी हो जायँ तब तो फिर मेरा जीवन एक आदर्शका जीवन हो जाय, पर श्रीकृष्णकी लीला समझमें आती नहीं। एक बार आपके पाँञ्चभौतिक ढाँचेके भीतर मेरा दिव्य मानसिक जगत् प्रकाशित होता है। दूसरे क्षण फिर वही पुरानी पद्धतिकी ओर वृत्ति खिंच जाती है। जीवनकी धुँधली लालसाका और मेरे भावजगत्का वास्तविक चित्रण करना सर्वथा मेरे लिये असंभव है।

यह भगवत्प्रेम का मार्ग
होता है, इसकी ऊँची अवस्था में
महापुरुष पहुँचता है, तब उस
इतनी विलक्षण, इतनी विचित्र
फिर उस अवस्था को विर
श्रीकृष्ण की खास दया होती है,
पाते हैं। उस अवस्था को
पढ़कर कोई समझ ही नहीं सक
अजब पागल की सी अवस्था
फिर उस अवस्था में पहुँचते
के द्वारा ऐश्वर्यमार्ग की भक्ति
के द्वारा होनेवाली भगवत्सेवा
नहीं होता। वह इतना ऊपर
राज्य में जा पहुँचता है कि उस
ही नहीं होती।
भाईजी की भीतरी दशा,

यह भगवत्प्रेमका मार्ग होता है, इसकी ऊँची अवस्थामें महापुरुष पहुँचता है, तब उसकी इतनी विलक्षण, इतनी विचित्र। फिर उस अवस्था को विरत श्रीकृष्णकी खास दया होती है, पाते हैं। उस अवस्थाको लिख पढ़कर कोई समझ ही नहीं सकता अजब पागल की सी अवस्था। फिर उस अवस्थामें पहुँचते के द्वारा ऐश्वर्य मार्ग की भक्ति के द्वारा होने वाली भगवत्सेवा नहीं होता। वह इतना ऊपर राज्यमें जा पहुँचता है कि उसके ही नहीं होती। भाईजी की भीतरी दशा

क्या है ये तो केवल ये ही जानते हैं, मुझे बिलकुल पता है नहीं, पर वैष्णव शास्त्रों को पढ़कर तथा और भी कई कारणोंसे यह मेरा अनुमान है कि भाईजी ठीक उसी अवस्थामें पहुँच गये हैं, इसलिये अब इनके द्वारा कोई ऐसी चेष्टा चलाकर बहुत कम होगी कि जिससे लोगोंमें बड़ा जोश फैले। कभी-कभी जो होगी या होती है, सो उसमें भी अगले की श्रद्धा अचिन्त भगवान्‌की किसी खास प्रेरणासे ही होती है, नहीं तो जो स्वभाव पहले था वह बिलकुल बदल गया है, अर्थात् उसपर रंग चढ़ते-चढ़ते इस जगत्‌की स्मृति ही अंतकरणमें बहुत ही कम, शायद नहीं ही होती होगी। यंत्रकी तरह सारा काम होता होगा।

भागवत आदि पढ़ें फिर पता चलेगा कि प्रेमी की बात तो दूर रही असली ब्रह्मप्राप्त होता है, उसकी भी ऐसी दशा हो जाती है कि

जैसे मदिरा पीकर मनुष्य अपने वस्त्रोंकी सुधि भुला देता है, वैसे ही असली ब्रह्म-प्राप्त पुरुषको यह भी पता नहीं रहता कि मेरा शरीर बैठा है, चल रहा है, खा रहा है, क्या कर रहा है। यह स्पष्ट श्लोक भागवतमें है।

और सच मानिये, जो भाईजीको प्रेमकी अवस्था प्राप्त है वह इस ब्रह्म- प्राप्तिके बादकी अवस्थाका प्रेम है, यह मेरा अनुमान है, गलत हो या सही, मैं नहीं जानता। ऐसी अवस्थामें इनका शरीर जो ठीक ठीक व्यवहार का काम करता है, इसे देखकर यही बात समझमें अनुमानसे आती है कि खास श्रीकृष्णकी इच्छा है, जगत्‌का कोई मंगल कराना है, जिससे वे उनके अंत:करणके द्वारा स्वयं इस प्रकारकी आश्चर्यमयी घटना करा रहे हैं, अर्थात् वहाँ उस स्थितिमें पहुँचकर भी इनके अंतकरणका कार्य जगत्‌की दृष्टिमें ठीक

ठीक हो रहा है।

अत: आप यह समझें कि अब इनके द्वारा तो तभी चेष्टा आपके लिये होगी जबकि आपमें विशेष टान उत्पन्न हो, अथवा पूर्वमें, आपने जो इनपर श्रद्धा की है, उस श्रद्धाको निमित्त बनाकर श्रीकृष्ण ही इनके अंतकरणमें आपके लिये खास तौरपर प्रेरणा करें। इन दो बातोंके अतिरिक्त मेरी समझमें तीसरी सूरत कोई नहीं है। हाँ, यह भी होता है कि कोई सरल भक्त हो, और इनसे बार-बार प्रार्थना करे, आपके लिये प्रार्थना करें, फिर उसकी प्रार्थनाके कारण इनमें इच्छा उत्पन्न होगी अर्थात भक्तवत्सलताका गुण प्रकाशित होगा।

असलमें तो मैंने जो लिखा है, वह सर्वथा ऊपर-ऊपर की बात है, भीतर की स्थितिको समझानेका कोई उपाय ही नहीं है। सच मानिये वह

र अवस्था का मुझे तो ज्ञान ही नहीं है,
मैं तो महान मलिन मन का प्राणी हूँ,
पर जो अनुमान होता है, वह भी समझाना
चाहने पर भी समझा नहीं सकता, क्योंकि
उसे कैसे समझाऊँ, ऐसी कोई युक्ति
दृष्टान्त ही ठीक ठीक नहीं मिलता।
अत इसलिये एक उपाय है
निवेदन कर सकता हूँ। आप स्वयं बार बार
चाहे इनका जवाब मिले या नहीं
पत्र में खूब अनुनय विनय करके
प्रार्थना करें, भाईजी जैसे हो आपके
चरणों से मुझे अलग न करें, मेरे हृदय
में श्रद्धा नहीं है, पर आप स्वयं कृपा
करें। यह प्रार्थना जितनी अधिक करुणता
से होगी, उतना ही अधिक श्रीकृष्ण
के द्वारा इनके मन में आपके प्रति
कुछ न कुछ करनेकी इच्छा उत्पन्न
करायी जायगी। असलमें तो संत और भगवान्

अवस्था का मुझे तो ज्ञान ही नहीं है, मैं तो महान् मलिन मनका प्राणी हूँ, पर जो अनुमान होता है वह भी समझाना चाहनेपर भी समझा नहीं सकता, क्योंकि उसे कैसे समझाऊँ, ऐसी कोई युक्ति दृष्टान्त ही ठीक ठीक नहीं मिलता।

इसलिये एक उपाय निवेदन कर सकता हूँ। आप स्वयं बार-बार चाहे इनका जवाब मिले या नहीं पत्रमें खूब अनुनय विनय करके प्रार्थना करें। भाईजी, जैसे हो आपके चरणोंसे मुझे अलग न करें, मेरे हृदयमें श्रद्धा नहीं है, पर आप स्वयं कृपा करें। यह प्रार्थना जितनी अधिक करुणतासे होगी, उतना ही अधिक श्रीकृष्णके द्वारा इनके मनमें आपके प्रति कुछ न कुछ करनेकी इच्छा उत्पन्न करायी जायगी। असलमें तो संत और भगवान्

एक ही होते हैं। राधा एवं श्रीकृष्ण
दोनों एक ही हैं। पर प्रेम देनेका
का काम स्वयं श्रीकृष्ण नहीं करते
राधारानी करती हैं, संत करते हैं।
इसीलिये भाईजी की स्थिति
तो कुछ ऐसी है कि एक भगवान ही
दो रूपमें अब इनके पाँचभौतिक
के द्वारा काम करते हैं।
कोई निष्ठा वाला सच्चा भक्त हो
तो फिर तो इनकी जगह उसे भगवान
का ही दर्शन हो, पर वैसी निष्ठा
नहीं है, अतएव सबके लिये
सदा भक्त भाव का ही प्रकाश
रहेगा।
यह मेरा अनुमान है, महाराजजी।
मैं मूर्ख हूँ, दावा नहीं है कि यही सच
है। सच झूठ भगवान जानें, जो समझमें
आया निवेदन कर दिया

एक ही होते हैं। राधा एवं श्रीकृष्ण दोनों एक ही हैं पर प्रेम देनेका काम स्वयं श्रीकृष्ण नहीं करते राधारानी करती हैं, संत करते हैं। इसीलिये भाईजीकी स्थिति तो कुछ ऐसी है कि एक भगवान् ही दो रूपमें अब इनके पाँचभौतिकके द्वारा काम करते हैं।

कोई निष्ठा वाला सच्चा भक्त हो तो फिर तो इनकी जगह उसे भगवान्का ही दर्शन हो, पर वैसी निष्ठा नहीं है, अतएव सबके लिये सदा भक्तभावका ही प्रकाश रहेगा।

यह मेरा अनुमान है, महाराजजी। मैं मूर्ख हूँ, दावा नहीं है कि यही सच है। सच झूठ भगवान् जानें, जो समझमें आया निवेदन कर दिया।

इतना लिखकर अपने विषयमें तो मैं कुछ भी नहीं लिख पाया क्योंकि जिस उद्देश्यको लेकर लिखने बैठा हूँ, पहले उसीको पूरा कर देना है, वह है गोस्वामीजीकी बात। आप जैसा उचित समझें वही कीजिये, भाईजी, उसीमें गोस्वामीजीका, हमारा अनन्त मंगल है। पर मनमें आया, भीतरके हृदयसे एक बार आपसे कह दूँ, आप गोस्वामीजीको स्वीकार कर लीजिये, उनके जीवनकी बागडोर अपने हाथमें लीजिये।

राधाबाबाके अपने अग्रज बन्धुओंको पत्र

पूज्य बाबाके छायावत् भाईजीके साथ रहनेके नियमका जब उनके अग्रज बन्धुओंको पता लगा तो उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। वे बाबाके उद्भट विद्वत्व, अटूट वेदान्त—निष्ठा एवं संन्यासके कठोर नियमोंके पालनसे भली-भाँति परिचित थे। अपने ऐसे अनुजको एक बनियेके साथ निरन्तर रहनेके कारणको वे ठीकसे हृदयंगम नहीं कर पा रहे थे। समय-समयपर पत्र लिखकर पू० बाबासे अपनी शंकाएँ निवारणके लिये प्रश्न किया करते थे। पू० बाबाने उनको जो उत्तर लिखे उन पत्रोंके कुछ अंश नीचे दिये जा रहे हैं।

(१)

श्रावण कृ० ११, सं० १९६६ वि०

पूज्य देवदत्त भैया,

सादर सप्रेम प्रणाम ...... एक और बड़े ही रहस्यकी बात लिख रहा हूँ। यथासंभव इसका प्रकाश बहुत कम लोगोंके सामने हो, यह मेरा आपके प्रति विशेष अनुरोध है। देखें, आपने श्रीजयदयालजी एवं श्रीहनुमानप्रसादजीका दर्शन किया है। चाहे आपकी श्रद्धा कम भी हो पर इसका अन्तिम फल भगवत्प्राप्ति ही है। श्रीजयदयालजी एवं श्रीहनुमानप्रसादजी केवल दीखनेमें बनिया है, यह बात मैं केवल अनर्गल कह रहा हूँ सो नहीं है, जैसा कह रहा हूँ वैसा ही ठीक घटेगा। समय ही मेरे इस कथनकी सत्यताको प्रमाणित कर सकता है। श्रीमद्भागवतके यमुलार्जुन उद्धारके प्रसंगको पढ़ेंगे—वहाँ एक श्लोक आया है—

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम्।
दर्शनान्नो भवेद्बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा॥

(श्रीमद्भा० १०/१०/४१)

जो बात श्रीनारदजीके दर्शनसे यमुलार्जुनके लिये सिद्ध हुई है, वही बात इन दोनोंके दर्शन करनेवालोंपर भी लागू होगी। दर्शन करनेवालोंकी श्रद्धा हो चाहे मत हो। यह संभव है कि आपकी श्रद्धाकी कमीके कारण, अथवा अन्य किसी प्रतिबन्धके कारण अथवा कुसंगमें पड़कर साधन छोड़ देनेके कारण आपको एक जन्म और धारण करना पड़े। जिस तरह यमलार्जुनको जड़त्वकी

प्राप्ति हुई थी। किन्तु जो इस बारका जन्म होगा, उसका प्रारब्ध ऐसा बनेगा, जो भगवान्‌को मिलाकर छोड़ेगा। किन्तु आप उधार रखें ही क्यों? तीव्रतासे साधनमें लगकर इसी जीवनके किसी थोड़ेसे अंशमें ही भगवत्प्राप्तिकर अपना जीवन सार्थक कर दें।

आपका—चक्रधर

(२)

आश्विन कृ०४ सं० १९९७ वि०

पू० देवदत्त एवं तारादत्त भैया

सादर सप्रेम प्रणाम। .... अपने जीवनकी सर्वतोमुखी गति भगवान्‌की ओर करनेके परम पवित्र उद्देश्यसे ही मैं भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके पास यावज्जीवन रहनेका व्रत लिये हूँ और रह रहा हूँ। भगवान्‌की इच्छासे श्रीहनुमानप्रसादजीके साथ मेरा जीवन-व्यापी संग नहीं हो सके, एक क्षणके पश्चात् दूसरे क्षण क्या घटित होनेवाला है, इसकी सूचना तो मात्र जगन्नियन्ता प्रभुको ही होना संभव है। परन्तु जबतक जगन्नियन्ताकी मरजी ऐसी ही है भाईजीको छोड़कर एक कदम भी इधर-उधर होनेका न तो मेरा संकल्प ही है, न ही मेरी रुचि।

विश्वास करें, श्रीभाईजीसे मेरा संग किसी भी व्यवहारके हेतुसे कदापि नहीं है। आप लोगोंसे नहीं मिलनेमें कोई लौकिक अड़चन हो, सो बात भी नहीं है। बड़े मजेमें श्रीभाईजी मेरे आने-जानेका टिकट कटा सकते हैं। परन्तु सच्ची बात यह है कि न तो मैं कारण ही बता सकता हूँ और न श्रीभाईजीको छोड़कर मैं कहीं भी आ-जा ही सकूँगा। कल क्या होगा, इसका पता नहीं।

मैं पिछले किन्हीं पत्रोंमें यह बात लिख भी चुका हूँ कि श्रीभाईजीके अनुग्रहसे ही मुझे परम तत्त्वके परमसार भगवान्‌के सगुण-साकार स्वरूपका अनुभव हुआ है। कर्तुम-अकर्तुम—अन्यथाकर्तुं समर्थ भगवान् जिसके अधिकारमें हों, जो अपनी सत्प्रेरणासे किसीको भगवत्प्रेम दान करनेमें समर्थ हो, किसी भी मरणातुर व्यक्तिको जो हाथ पकड़कर भगवान्‌के दर्शन दिलाकर उसे भगवद्धामकी यात्रा करानेमें समर्थ हो, आप लोग कल्पना कर लें कि ऐसे व्यक्तिके जीवन व्यापी छायावत् संग रहनेकी मेरी कामना किस हेतुसे होनी संभव है?

आपका—चक्रधर

पू० पोद्दार महाराजके स्वरूप, महत्वका बखान

बाबाको श्रीकृष्णके प्रथम दर्शनके पश्चात् उनका श्रीविग्रह स्वप्न अथवा जाग्रत किसी भी अवस्थामें उनकी दृष्टिपथसे हटता नहीं था। पहले वह बोलता नहीं था। पीछे उसने बोलना प्रारम्भ कर दिया। उनकी वाणी इतनी मधुरातिमधुर होती कि बाबाके अंग अवश हो जाते। उनका बाह्यज्ञान विलुप्त हो जाता, सर्वांग अवश हो जाते। उनका रोम-रोम पुकार उठता—'आओ, प्रियतम! प्राणेश्वर!! आओ! स्वामिन्! नाथ! एक बार ही नहीं, अनन्त कालतक इसी दासीसे आपके हृदयकी जो भी रहस्यमयी वार्ता हो वह अनवरत करते रहो।'

वह मूर्ति बाबासे जो भी बात करती, वह श्रीपोद्दार महाराजकी (श्रीभाईजी) महिमाका ही बखान होता।

बाबा कहा करते थे कि पू० श्रीपोद्दार महाराजकी जो उच्चसे उच्च भाव-भूमि और स्थिति है इनके संबंधमें जो कुछ मेरी श्रद्धा है वह सब श्रीकृष्णके द्वारा बतायी हुई उनकी महिमाके आधार पर ही है। श्रीपोद्दार महाराज तो प्राय: ऐसा आचरण करते थे कि जिससे उनके प्रति मैं अश्रद्धा कर लूँ। श्रीपोद्दार महाराज पहले तो वैसा आचरण करते, फिर अतिशय प्यारसे मुझे अपना सुगुप्त रहस्य भी खोलकर बता देते।

श्रीपोद्दार महाराज इसे स्वीकार कर लेते कि भगवान्‌की जो मुझपर सीमा विहीन कृपा है, उस कृपाका रहस्य कहीं अनावृत नहीं हो जाय-वह कृपा मेरा सदा सुगुप्त धन बना रहे, इसी कारण मेरे द्वारा वैसा आचरण हो जाता है जिसे अनुचित कहा जाता है। श्रीपोद्दार महाराज अपनेको इसी प्रकार ऐसे अटपटे आचरणोंसे संगुप्त रखते थे। वे अनेकों बार ऐसा आचरण कर जाते किन्तु जब श्रीकृष्ण मेरे सम्मुख उस आचरणका रहस्य खोलते तो वह आचरण जगत्‌के लिये इतना कल्याणकारी सिद्ध होता कि उस पर करोड़ों सदाचार बलिहार कर दिये जावें। कहनेका इतना ही अर्थ है कि संगोपनप्रिय पोद्दार महाराजके रहस्य-गर्भित आचरण इसी प्रकार अटपटे होते थे। परन्तु उसी समय श्रीकृष्ण प्रकट होकर मुझे सचेत कर देते थे और वे उनकी उस क्रियाका इतना विलक्षण महाकल्याणकारी प्रभाव बताते कि मैं मुग्ध और चकित हो जाता था। श्रीपोद्दार महाराजके प्रति मेरी श्रद्धा स्वयं श्रीकृष्णने उनका हृदय खोल-खोलकर

ही बढ़ायी है। अन्यथा उनके बाह्य-आचरणोंसे उनपर श्रद्धा करना मेरे लिये सर्वथा असंभव था।

श्रीकृष्णके प्रकट होते ही बाबाकी दृष्टि अपने प्रियतमके अधरोंकी अप्रतिम शोभा निहारने लगती। वे देखते कि उनके मृदु मुसकानकी मधुरता प्रतिपल नवीन-नवीनतर हो रही है। और, उनकी वाणी तो इतनी रसमयी है कि मानो सुधाकी सरिता ही बह चली हो। उन्हें अनुभव होता मानो नन्दनन्दन उन्हें कुछ कहना चाह रहे हैं। उनकी मन-इन्द्रियाँ मानो सब सिमट कर केवल कर्णेन्द्रियोंमें ही समाहित हो जातीं। वे सुनने लगते और पाते कि श्रीकृष्ण श्रीपोद्दार महाराजका यश-कीर्तन करनेमें ही उत्सुक और लालायित हो रहे हैं।

यहाँ यह बात निरन्तर ध्यानमें रखनी है कि बाबाका मन उन दिनों अप्राकृताविष्ट था। बात यह है कि प्राकृत राज्यके प्राणीमें जिसका मन प्राकृत है भगवानका अप्राकृत स्वरूप प्रकट हो नहीं सकता। अतः जब किसी भाग्यवान्को भगवान् परात्पर श्रीकृष्णके दर्शन होते हैं, उस समय महज्जन कृपा अथवा भगवत्कृपा उसके मनपर अप्राकृत आवरण अवतीर्ण कर देती है। तभी वह पात्र होता है कि उस अप्राकृत राज्यके रूपका दर्शन कर सके, उस अप्राकृत राज्यके शब्द, वेणुनिनाद अथवा श्रीकृष्णकी परम चिन्मयी भगवद्वाणीको सुन सके, उनका अधरामृत प्रसाद ग्रहण कर सके। साधारण मानव मनके लिये उस अप्राकृत राज्यके रूपकी, वस्तुकी, कार्य-व्यापारकी कल्पना करना भी सर्वथा असंभव है। वह पूर्णतया कल्पनातीत है।

अतः हम सभी विषयी जीवोंका मन श्रीकृष्णकी बोलीमें कितनी मधुरता, सत्यता, पवित्रता एवं सुन्दरता थी—इसका अनुमान ही नहीं कर सकता, फिर कोई उसका शब्दों द्वारा आकलन करे यह तो सर्वथा-सर्वथा असंभव है।

बाबा अनेक बार यह बता चुके हैं कि प्राकृत मनसे अप्राकृत वस्तुकी प्राप्ति कैसे हो? वे कहते थे—यह मन भी प्राकृत है और बुद्धि भी प्राकृत है। इस मायाजगतकी किसी भी वस्तुकी गति उस मायातीत राज्यमें है ही नहीं। माया जगतके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धसे मायातीत जगतके शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध सर्वथा भिन्न हैं। माया जगतकी इन्द्रियोंसे ये सर्वथा अग्राह्य हैं। माया जगतकी इन्द्रियोंकी वहाँ गति ही नहीं है। पर ये इन्द्रियाँ स्वयंको समाप्त

कर सकती हैं। जहाँ इस प्राकृत मनकी समाप्ति हुई, वहीं एक अप्राकृत राज्य स्वतः अवतरित हो जाता है। और इसका साधन है एक मात्र महत्कृपा अथवा भगवत्कृपा। यह पुरुषार्थ द्वारा साध्य नहीं। भगवान् और रससिद्ध सन्त दोनों ही बहुत उदार होते हैं। यदि कोई अपनेको सर्वथा भगवान्पर अथवा किसी भी महत् सन्त पर न्यौछावर कर दे तो भगवान् उसकी कामना अवश्य पूरी कर देते हैं। भगवान् किसीकी आशा खंडित नहीं करते। अप्राकृत राज्यमें प्रवेशकी एक मात्र यही साधना है, एवं यही उस अप्राकृत राज्यके अवतरणका एक मात्र उपाय है।

भगवान् जब नर-वपु धारण करके नरलीला करते हैं, अथवा भगवान्के लीला राज्यमें प्रविष्ट श्रीपोद्दार महाराज जैसे सन्त जबतक इस शरीरमें है, वे देखते, विचारते, छूते एवं संकल्प भी उसी प्रकार करते हैं जैसे साधारण जीव करता है, परन्तु उस सन्त अथवा भगवान्का वह कार्य-व्यापार मानवीय कार्य-व्यापारसे सर्वथा-सर्वथा भिन्न होता है। सन्त एवं भगवान्की विरुद्ध धर्माश्रयता ही उनकी परम विशेषता होती है।

क्या कोई कल्पना कर सकता है कि अनन्त प्रकाश और अनन्त अन्धकार एक साथ एक देशमें रह सकते हैं? कोई भी व्यक्ति कैसे कल्पना करेगा कि विपरीत लोक-व्यवहारका आचरण करता हुआ वह व्यक्ति नित्य-अखंड परम विशुद्ध सत्व परायण है। उपनिषदोंमें यह कथा आती है कि दुर्वासा ऋषि गोपियोंके द्वारा षड्रस व्यंजन भोजन करानेपर भोजन करनेके उपरान्त भी कहते हैं कि मैं दूर्वा ही खाता हूँ एवं वे श्रीकृष्णके संबंधमें भी गोपियोंसे कहते हैं कि श्रीकृष्ण बाल-ब्रह्मचारी हैं जबकि गोपियाँ उनसे अंग-संग एवं विहार करके लौटती हुई दुर्वासाजीके पास बढ़ी हुई यमुनासे निस्तरणका उपाय पूछने आती हैं। दुर्वासा गोपियोंसे यही कहते हैं कि यमुनाजीसे कहना दुर्वासा दूर्वाभक्षी है और श्रीकृष्ण अखण्ड ब्रह्मचारी हैं, इस सत्यके प्रभावसे हमें रास्ता दे दो। बढ़ी हुई यमुना तत्क्षण घट जाती है और गोपियाँ यमुना पारकर दूसरे तटपर पहुँच जाती हैं।

अतः बाबा कहा करते थे कि अप्राकृत मनकी प्राप्तिके पश्चात् ही मानव संत-जीवनकी विलक्षणता एवं भगवत्लीलाको, लीलाके तत्त्वको, उसके रहस्योंको समझ पाता है एवं उनका रस ले पाता है।

श्रीभाईजीका दिव्य परिचय

यह प्रसंग श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीकी डायरीमें लिखा था। बात यह थी कि जब-जब श्रीकृष्ण पोद्दार महाराजकी स्तुति करते बाबा उसे एक कागजपर लिपिबद्ध कर लेते थे और उसे मालाकी तरह अपने गलेमें धारण किये रखते थे। कभी-कभी ये प्रसंग वे श्रीगोस्वामीजी आदि अनेक महाभाग्यवान् कृपा-पात्रोंको सुनाते थे। गोस्वामीजीने उसे अपनी डायरीमें उद्धृत कर लिया था। यहाँ नीचे भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा पोद्दार महाराजकी महिमामें कही वाणी उद्धृत है:—

'यह कोई भी ठीक-ठीक नहीं बता सकता पोद्दार महाराज रूप जीव क्या है? यदि इसके सम्बन्धमें कुछ भी निर्वचन किया जा सकता है तो मात्र इतना ही कि यह है मात्र मेरा सुख, पूर्णतया शतप्रतिशत मात्र मेरी रुचिमें ढली मूर्ति। यह मूर्तिमान मेरी रुचि-पूर्तिका विरल यंत्र है। जीव होते हुए भी यह इतना विशुद्ध हो गया है कि मलिन कामोपभोगकी कल्पनाका लेश भी इसके चित्तमें प्रवेश नहीं पा सकता। यह खाता-पीता है, देखता-सुनता है परन्तु इसके सभी इन्द्रिय-व्यापार मुझसे एकमेव घुले-मिले होकर ही होते हैं। अत: यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि इसके शरीर और इन्द्रियोंका संचालन इसके द्वारा हो रहा है, यह मुझमें इतना घुला मिला है कि इसके शरीर मन-बुद्धि और इन्द्रियों एवं प्राणोंका भी यथयोग्य संचालन मैं स्वयं ही करता हूँ।'

'यह ऐसी परम सुन्दर महा कल्याण-वर्षिणी नदी है, जो अनवरत प्रवाहित हो रही है मेरी शुभच्छा पूर्तिके लिये। इसके इन्द्रिय समूह, इसका शरीर, इसका मन, इसकी बुद्धि, इसके प्राण, इसका अहं ये सभी यंत्र-चालितसे मुझे यंत्री द्वारा ही संचालित होते हैं क्योंकि यह सदा-सर्वदा स्वरूपसे मुझसे एकमेक है।'

'इसका जीवन परम एवं चरम त्यागमय है और सर्वसमर्पणमय है। परम एवं चरम त्यागका क्या वास्तविक स्वरूप होता है? सर्वसमर्पणमय उज्ज्वलतम प्रेमका क्या आदर्श है? स्वसुखवाञ्छाविरहित प्रियतम-सुखेच्छामय स्वभाव किसे कहते हैं? अहंकी चिन्ता और मंगलकामनाकी तो बात ही छोड़ें, अहंकी स्मृतिसे भी शून्य प्रियतम स्मृतिमय जीवन कैसा होता है? पोद्दार

महाराजने अपने प्रत्यक्ष जीवनसे इसका एक नित्य चेतन, क्रियाशील, मूर्तिमान उदाहरण प्रस्तुत करके जगतके इतिहासमें एक अभूतपूर्व दान किया है। ऐसा दान भूतकालमें भी विरला ही हुआ है और इस कलिकालमें तो असंभव है।'

ठीक समझ लो, पोद्दार महाराज मेरा ही स्वरूप हैं, मेरी दूसरी प्रतिमूर्ति हैं। मेरी ही भाँति इनमें मेरे समस्त भगवदीय गुणोंका भी प्राकट्य है। परन्तु इसके स्वभावकी यही विलक्षणता है कि यह अपनेमें इन सर्वोच्च गुणोंका अभाव देखता है। यह अपनेको सर्वथा सब विधि कुरूप, कुत्सित, शील-गुणरहित एवं दोषोंसे भरा ही अनुभव करता है, परन्तु यथार्थमें है मुझे रिझानेवाले समस्त गुण-गणोंका अगाध, अपरिसीम, अनन्त भण्डार। यह अपनेको कभी मेरे योग्य नहीं समझता, सदा सकुचाता रहता है, यह अपनेको दोषागार मानकर सदा मेरे सम्मुख अतिशय लज्जा और धिक्कारका भाजन अनुभव करता है। परन्तु न तो इसका यह दैन्य और अपनेको हीन देखना केवल अभिनय एवं दम्भाचरण है और न ही इससे इसके गुणोंकी महानतामें कहीं कोई न्यूनता ही आती है। यह कुछ भी समझे, कुछ भी बोले, है यह मुझे रिझानेवाले समस्त गुण-गणोंका अगाध, अनन्त असीम भण्डार। इसका वास्तविक स्वरूप शिव, ब्रह्मादि देव-गणोंके समान स्तुत्य, नारद, सनत्कुमारादिके समान भक्तिमान् एवं श्लाघ्य, वशिष्ठ, व्यासादि महापुरुषोंके समान वन्दनीय, याज्ञवल्क्य, शुकदेवादि ज्ञानियों जैसा सेवनीय, निर्मल परम गौरवमय और महामहिमामय है। फिरभी इसमें अपने गुणोंका सर्वथा अभिमान नहीं है, इसका यह वास्तविक दैन्य मुझे सर्वाधिक प्रिय है।

कभी कहते—'तुझे विश्वास करना चाहिये इस पोद्दार महाराज जीवके हृदयसे मैं एक क्षणके लिये भी नहीं हटता। मेरी ध्यानमूर्तिसे नहीं, मैं स्वयं इसके हृदयमें परम विश्राम पाता हूँ। इसका अन्त:करण मेरा साक्षात् धाम है। जब भी यह नेत्र मूँदता है, उस समय इसकी पलकोंके भीतर मुझे निज मुस्कान बिखेरनी ही पड़ती है। यह स्वप्न देखता है, तब भी मैं इसके स्वप्नोंमें ही रहता हूँ। इसके जीव-शरीरके ढाँचेके भीतर अहंता, ममता, देहाध्यास, जगतका अध्यास, लोक-वेदकी भावना, भोग-मोक्षकी स्पृहा कुछ भी तो नहीं है। मेरे विरहकी अग्निमें सब जलकर खाक हो गयीं। फिर मेरे मिलनानन्दकी अजस्र-धारामें उसकी राख भी बह गयी। तत्पश्चात् मेरे प्रेमकी प्रबल रसधाराने उसकी

गंधका लेश भी नहीं छोड़ा। अब वहाँ मात्र मेरा प्रेम ही लहरा रहा है। तरंगों पर तरंगे उठ रही हैं। वे तरंगें भी मेरा ही रूप धारण किये मुझे ही नहला रही है।'

'मेरे जिस सगुण-साकार स्वरूपके जो तुझे दर्शन हुए हैं, वे किसी भी साधनाका सर्वथा फल नहीं है। अद्वैत-तत्व-निष्ठासे करोड़ों कल्पोंपर्यन्त साधना करने पर भी तुझे मेरे इस स्वरूपके दर्शन कदापि कदापि नहीं होते। परन्तु तेरे जीवनमें व्रजभावका वपन किया पोद्दार महराजने। यह व्रजभाव सम्पन्न इतने उच्च कोटिका सिद्ध-भक्त है कि इसके कृपा-प्रसादसे ही तुझ निराकारवादी अद्वैत-तत्वनिष्ठके जीवनमें मधुरभावापन्न रसोपासनाकी सुधामयी धारा प्रवाहित हुई।'

'पोद्दार महाराजके देहको मैंने पूरा अपना यंत्र बना रखा है। अत: कभी तो इस देहका नियन्ता मैं गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण हो जाता हूँ। कभी गीतातत्वोपदेशक चतुर्भुज नारायणके रूपमें इस देहसे अपनी संकल्प-पूर्ति कराता हूँ। इस प्रकार इसमेंसे भिन्न स्वर बजते हैं, कभी इस देह-यंत्रसे असीम कृपा-माधुर्य, परम सुकोमल दयाभरे स्वर बजते हैं, कभी कठोर गरजते स्वर भी बज उठते हैं, इसमें इसका स्वभाव-वैचित्र्य सर्वथा नहीं है। यह स्वयं तो कुछ है ही नहीं। जिस समय जैसे पात्रसे जो भी लीला मुझे करनी होती है, उस समय इस पोद्दार महाराजरूप यंत्रके अन्तरालसे मैं वैसी लीला मुखरित कर बैठता हूँ। इसमें इसका स्वयंका स्वभाव-वैचित्र्य सर्वथा नहीं है। यह तो कुछ है ही नहीं। जो कुछ भी कभी था, पूरा मुझसे अभिन्न हो गया। अत: यह कभी महामोही गृहस्थ-सा आचरण करता दृष्टिगोचर होता है, कहीं महात्यागी तपस्वी विरक्त दिखता है, कहीं रागी, कहीं भोगी, कहीं महाज्ञानी समझमें आता है। वास्तवमें यह स्वयंमें कुछ भी नहीं है। यह तो मात्र यंत्र है, और मैं यंत्री इसमेंसे जैसे स्वर बजाता हूँ वे ही स्वर इसमेंसे निकलते हैं। इसकी यही विलक्षण चरित्र शोभा है। इसमें स्वयंका कहीं कोई आग्रह ही नहीं है कि यंत्रको अमुक एक प्रकारसे ही बजाया जाय। यह तो मेरे सुख एवं मेरी रुचिका संकेत पाते ही जैसा मैं चाहता हूँ, सांगोपांग वैसा ही नाटक कर जाता है। और मैं 'वाह' कर बैठता हूँ। और मेरा सुख ही इसकी कृतकृत्यता है।'

....

प्रसंगवश पू० बाबाने शिवकुमार केडियाको दि० २०-२-४१ को

रतनगढ़में श्रीभाईजीके बारेमें लिखकर दिया उसका थोड़ा अंश नीचे प्रस्तुत है—

'श्रीभाईजीकी स्थितिको सर्वसाधारण समझ ही नहीं सकता। उच्च साधन सम्पन्न सत्संगी भी इन बातोंको हृदयंगम नहीं कर सकता, ... मेरे ध्यानमें युगों-युगोंमें ऐसी उच्च आध्यात्मिक स्थितिका कोई सिद्ध भगवत्कृपा पात्र आया ही नहीं है, परन्तु हुआ होगा तो मेरी जानकारीमें नहीं है। मैंने कहीं उल्लेख नहीं पाया है। नारद भक्ति-सूत्रोंमें महासिद्ध प्रेमी भक्त नारदजीने सिद्धान्तोंमें ऐसी स्थितिका उल्लेख अवश्य किया है।'

उनके सम्पर्कमें आनेवाले माया जगत्‌के सभी जीव चाहे वे मक्खी मच्छर, पशु-पक्षी, मनुष्य, पितर, देवगण कोई भी हों एक-न-एक दिन तर जावेंगे। उनके प्राकृत शरीरका अस्तित्व त्रिभुवनके लिये परम पवित्र और मंगल विधान है।

****

पू० पोद्दार महाराजके जीवनव्यापी संगका व्रत

भगवान् श्रीकृष्णके आदेश देकर अन्तर्धान हो जानेपर अब बाबाके मनमें वृन्दावन जानेका भाव विसर्जित हो गया था। वे अपने उपासना कक्षसे उठकर श्रीपोद्दार महाराजके पास आये। श्रीपोद्दार महाराज अपने सम्पादन कार्यमें संलग्न थे। उनके पास बाबा चुपचाप बैठ गये। फिर अत्यन्त मनुहारपूर्वक बोले—अब मैं वृन्दावन नहीं जाऊँगा।

श्रीपोद्दार महाराज भी घुटे हुए गुरु थे। कहने लगे—'नहीं, नहीं आपको भगवानने दो पैर दिये हैं, चलनेकी शक्ति भी दी है, फिर रास्ता पूछनेके लिये मुखमें वाणी दी है। लोग आपको वृन्दावनका रास्ता बता ही देंगे।'

श्रीगुरुदेवने श्रीपोद्दार महाराजके घुटनोंको सहलाते हुए थोड़ी मनुहार करते हुए कहा—'क्षमा करिये, अब पुरानी बात भूल जाइये, मैंने अब वृन्दावन जानेका विचार छोड़ दिया है। अब तो एक ही बात है, सदा आपके ही पास रहना है। बस, चौबीस घंटेमें एक बार आपका दर्शन मिल जाया करे।'

किसी भी वस्तुको अच्छी प्रकारसे गाड़नेके लिय उसे हिलानी पड़ती ही है अत: पोद्दार महाराजने पर्याप्त आना-कानी की परन्तु बाबाने अपनी विनय, प्रेम, मनुहारसे उन्हें मना ही लिया।

अब बाबाको अन्तिम बार अपनी माँसे मिलकर सदा-सदाके लिये विदाई ले लेनी थी।

बाबाने इसके लिये भी पोद्दार महाराजसे अनुमति माँगी।

उनका अनुमति माँगनेके पीछे इतनाही उद्देश्य था कि ग्राम जानेपर माँकी ममताके कारण पोद्दार महाराजके पास रहनेके व्रतमें कहीं कोई बाधा नहीं खड़ी हो।

पू० श्रीपोद्दार महाराज द्वारा यह आश्वासन भी प्रसन्न मनसे दे दिये जानेके पश्चात् बाबा बाँकुड़ासे अपने ग्राम फखरपुरके लिये रवाना हुए। टिकटकी व्यवस्था तो पोद्दार महाराज द्वारा कर दी गयी थी। अपनी जीवनदात्री माँ एवं परिजनोंसे मिलकर बाबा वापस श्रीभाईजीके पास रहनेके लिये आ गये। इसके बाद बाबा आजीवन कभी श्रीभाईजीसे अलग नहीं रहे।

जीवन व्यापी संगमें बाधायें एवं सालासरसे चिन्मय पुष्पकी प्राप्ति

११ मई, १९३९ ई० के मध्याह्नकालसे बाबाने श्रीपोद्दार महाराजके साथ रहनेका आजीवन व्रत ले लिया। यह उनका व्रत अखण्ड रूपसे २२ मार्च १९७१ पू० पोद्दार महाराजके महा प्रस्थान तक निर्बाध चलता रहा। इस नियममें एक बार श्रीपोद्दार महाराजके वृन्दावनधाम रूप पंचभूतात्मक पिंजरके दर्शन अवश्य हो जायें। जिस दिन इस दर्शनमें व्यवधान होगा, उस दिन उनका यह व्रत खण्डित हो जायेगा क्योंकि सचल वृन्दावन स्वरूप पोद्दार महाराज उनसे विलग हो जायेंगे।

इस नियममें अनेक बार बहुत बड़ी-बड़ी बाधाएँ आयीं। यह अनुबन्ध श्रीपोद्दार महाराज एवं बाबाके मध्य अति गोपनीय था। इसका प्रचार होना तो पोद्दार महाराजको न तो अभिप्रेत था, न ही बाबाको ही। क्योंकि संसारके लोग इसका उपहास भले बनावें, इस निष्ठाकी गरिमाका उनका श्रद्धाहीन मन कल्पना भी नहीं कर सकता था।

हाँ, पू० पोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी आदि कुछ अन्तरंग लोगोंको अवश्य इसका ज्ञान था। बत्तीस वर्षके दीर्घ कालमानमें इसमें अनेक बार बहुत बाधाएँ आयीं।

अगणित बाधाओंके आनेके उपरान्त भी प्रभु प्रसाद और बाबाकी अदम्य निष्ठाके कारण यह संकल्प अखण्ड निर्वाह हो गया।

पहली बाधा तो गोरखपुरमें ही आयी।

श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दका गोरखपुर आये हुए थे। श्रीघनश्यामदासजी जालान जो यावज्जीवन सेठजीके दाहिने हाथके समान अनन्य सहयोगी रहे, उनके ही घर साहबगंजमें श्रीगोयन्दकाजी ठहरा करते थे। वहीं वे ठहरे हुए थे। अचानक श्रीसेठजीकी तबियत खराब हो गयी। हम आगे भी कह चुके हैं कि श्रीसेठजीके प्रति श्रीपोद्दार महाराजमें गुरुभाव था। वे अति उच्च कोटिके सिद्ध सन्त तो थे ही, जयसिडीहमें उनके ही सान्निध्यमें पू० पोद्दार महाराजको भगवान् विष्णुके दर्शन हुए थे। श्रीसेठजी अंग्रेजी एलोपैथीकी दवायें तो स्पर्श ही नहीं करते थे, आयुर्वेदमें भी रसौषधि नहीं लेते थे। वे मात्र काष्ठौषधि ही लेते थे। यद्यपि वैद्योंने उपचारकी बहुत चेष्टा की किन्तु सेठजीकी अवस्था बिगड़ती ही गयी। श्रीपोद्दार महाराज मध्याह्नके समय साहबगंज चले गये थे, सो श्रीसेठजीकी अति नाजुक अवस्थाके कारण मध्य रात्रि तक नहीं लौटे। इस बातकी किसीको भी कल्पना ही नहीं थी कि सेठजी इतने रुग्ण हो जावेंगे और पू० पोद्दार महाराज वहाँ रात्रि पर्यन्त रुके रह जावेंगे। यदि इसका तनिक भी आभास होता तो श्रीबाबा पू० पोद्दार महाराजसे जानेके पूर्व भेंट कर लेते और उस दिवसका नियम पूरा हो जाता। अब तो यदि सूर्योदयके पूर्व पोद्दार महाराजसे मिलन नहीं हुआ तो यह व्रत तो टूट ही जायेगा।

श्रीसेठजीकी रुग्णतासे गीतावाटिकामें भी सभीका मन अतिशय व्यग्र था। इस व्यग्रताके वातावरणमें बाबासे मिलनेकी बात श्रीपोद्दार महाराज भी विस्मृत कर गये। जब अर्ध रात्रि व्यतीत हो गयी और ब्रह्म मुहुर्तकी बेला आ गयी तो पू० माताजी (श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी) अत्यधिक चिन्तित हो गयीं। उनके मनमें बाबाके नियम खंडनसे उत्पन्न परिणामकी चिन्ता सताने लगी। वे सोचने लगीं कि बाबा नियम खंडित होनेपर हम लोगोंका संग त्यागकर वृन्दावन चले जायेंगे। क्योंकि साथ रहनेका व्रत तो सूर्योदय होते ही खंडित हो ही जायेगा। पू० माँ अतिशय आकुल हो रही थीं। उन्हें निद्रा कहाँ?

इस प्रकार चिन्ता करते करते दो-ढ़ाई बज गये। रात्रिके ढ़ाई तीन बजे श्रीघनश्यामदासजीके घर पर पू० पोद्दार महाराजको माताजीने फोन किया। पू०

माँने उन्हें बाबाके व्रतका ध्यान दिलाया। श्रीपोद्दार महाराज भी समझ गये कि सूर्योदय होनेमें मात्र घंटे डेढ़ घंटेका विलम्ब है। मोटर आदि आवागमनका साधन तो उन दिनों था नहीं। घोड़ेके इक्केमें बैठकर आना-जाना होता था। गीतावाटिका उन दिनों सर्वथा जंगलमें ही थी। चतुर्दिक् आम, अमरूद, लीची आदिके घने वृक्षोंके बगीचे और कच्चा रास्ता था। इक्केमें एक घंटा तो पहुँचनेमें लग जाता था। गोरखपुर अति पूर्वमें होनेसे वहाँ सूर्योदय पश्चिमी भारतसे एक घंटे पूर्व हुआ करता है। फिर मध्य रात्रिमें वाहन (इक्का) सामान्यतया तो उपलब्ध भी नहीं था, किसी वाहन (इक्के) वालेके घर भेजकर उसे निद्रित अवस्थासे उठाकर वाहनमें घोड़ा जुतवाकर बुलवाना पड़ता, तब गीतावाटिका (बगीचा) पहुँचनेकी स्थिति होती। पू० पोद्दार महाराजको, जब कि श्रीसेठजी अत्यधिक रुग्ण हैं, उन्हें छोड़कर ऐसी विषम बेला मध्यरात्रिमें गीतावाटिका जानेकी ऐसी क्या त्वरा हो गयी है, यह भी श्रीसेठजीके समीपस्थ सामान्यजनके समझके परेकी बात थी।

फिर भी उन्होंने श्रीसेठजीके समीपस्थ लोगोंसे कहा—'श्रीसेठजीकी तबियत अब वैसी चिन्ताजनक नहीं है, मैं एक अति आवश्यक कार्यसे तुरन्त ही गीतावाटिका जाना चाहता हूँ।'

श्रीपोद्दार महाराजके मनमें संकल्प उत्थित होते ही कोई अचिन्त्य विधान सक्रिय हो उठा। और उस अचिन्त्य विधानके फलस्वरूप श्रीसेठजीकी आँखोंमें निद्राकी खुमारी आना प्रारम्भ हो गया। लोगोंने स्पष्ट अनुभव किया कि सेठजीको झपकी लग रही है। सहज ही मोटरकार भी उपलब्ध हो गयी और पोद्दार महाराज मोटरकारसे गीतावाटिका और वहाँसे सीधे बाबाकी कुटिया पर पहुँचे।

श्रीपोद्दार महाराज और बाबाका वह सजल नेत्र परस्पर मिलन कैसा विशुद्ध रसमय था, इसे तो कोई प्रेम भरा हृदय ही अनुभव कर सकता है। जड़ लेखनीमें कहाँ सामर्थ्य है कि उसे भाव दे सके।

दूसरी घटना रतनगढ़की है। राजस्थानमें सालासर नामक एक स्थान है। यहाँपर श्रीहनुमानजी महाराजका सिद्ध स्थल है। श्रीसालासरके बालाजी महाराजसे ही श्रीपोद्दार महाराजकी दादीने मान्यता करके बालक 'हनुमान' को प्राप्त किया था और इसीलिये बालकका नामकरण संस्कार भी हनुमानप्रसाद

पोद्दार हुआ था। मारवाड़ियोंमें सालासरके बालाजी महाराजकी इतनी मान्यता है कि वे विदेशोंसे भी बालाजीके सम्मुख बच्चोंका केश समर्पण संस्कार करने आते हैं।

रतनगढ़से सालासर जानेके लिये सुजानगढ़ होकर जाना पड़ता है। यह दूरी रतनगढ़से लगभग १०० किलोमीटर रही होगी। श्रीपोद्दार महाराज अनेक मारवाड़ी भाईयोंकेसाथ कार तथा बससे सालासर गये। सुबह नौ-दस बजे बाबासे मिलकर गये थे। वे साथ ही यह कह भी गये थे कि सूर्यास्तके पहले-पहले मैं पुनः लौटकर रतनगढ़ आ जाऊँगा। साथ ही हँसकर यह भी कह गये थे कि कहीं कुछ विलम्ब हो जाय तो आप घर छोड़कर सड़क पर मत बैठ जाइयेगा। भवितव्यता ऐसी हुई कि वे सूर्यास्त तक नहीं आ सके। रात्रिके ९-१० बज गये, उनके आनेका काई सुराग ही नहीं था। घरमें सभीको बहुत चिन्ता सताने लगी। तरह-तरहके विचार मनमें आने लगे। जहाँ भी विशुद्ध स्नेह होता है, वहाँ अनिष्टकी ही आशंका हुआ करती है। श्रीपोद्दार महाराज यद्यपि बाबाको घरसे बाहर नहीं बैठनेका आग्रह कर गये थे, परन्तु फिर भी उन्होंने मनमें यह निश्चय कर लिया था कि मध्यरात्रि तक यदि पोद्दार महाराज नहीं आये तो वे घरसे बाहर जाकर राहमें बैठ जायेंगे।

मध्यरात्रिके दस बजेके आसपास श्रीपोद्दार महाराज आये। उनकी मोटरकार रास्तेमें खराब हो गयी थी, सुधरवानेमें समय लग गया। जैसे ही श्रीपोद्दार महाराज अपनी हवेलीमें पहुँचे, वे सीधे पू० बाबाके पास गये।

पू० बाबा तो चिन्तातुर हुए उनकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे। श्रीपोद्दार महाराजने कहा—'बाबा! मैं भी आपके ही विचारोंमें सचिन्त्य उलझा रहा, परन्तु देखिये, मैं आपके लिये एक विलक्षण वस्तु लाया हूँ। ज्यों ही मैंने सालासरमें श्रीबालाजी महाराजको प्रणाम किया, उनके द्वारा यह पुष्प अपने आप मेरे हाथोंमें आ गया। जबसे यह फूल मेरी हथेलीमें आया है तबसे मैं इसे अपनी मुट्ठीमें लिये हूँ। मुट्ठीमें भी इसलिये लिये हुए हूँ कि आपको दे दूँ।'

यह कहकर वह पुष्प श्रीपोद्दार महाराजने बाबाको दे दिया। वह सर्वथा अप्राकृत पुष्प था। उसकी सुगन्ध बहुत ही विलक्षण थी। बाबाका सम्पूर्ण निवास-कक्ष उसकी भीनी-भीनी सुगन्धसे महक एवं गमक उठा। बड़ी ही मदमाती सुगन्ध थी उसकी। ज्योंही वह पुष्प पू० बाबाने हाथोंमें लिया, एक

और परिवर्तन हुआ। बाबाके सामनेसे यह सम्पूर्ण लोक तिरोहित हो गया और चिन्मय, दिव्य वृन्दावनका अवतरण हो गया। जिस स्थितिमें बाबाने पालथी मारे श्रीपोद्दारजीसे यह पुष्प लिया था, उसी स्थितिमे वे मध्यरात्रिके तीन बजे तक लगातार पाँच घंटे बैठे रहे। वे बैठे-बैठे अप्राकृतधाम श्रीवृन्दावनकी लोकातीत वनस्थलियोंके पुष्प, लता, झाड़ियाँ और पथोंकी शोभाको देखते रहे।

सभी ऐसी शोभा बिखेर रहे थे जैसी कभी देखी नहीं। सभी एकसे एक बढ़कर अभिनव सुन्दर। बाबा उस समय न तो स्वप्नकालमें थे, न ही ध्यानावस्थामें। वे पूर्णतया जाग्रत थे। परन्तु उसे जाग्रत भी नहीं कहा जा सकता। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनोंसे ही वह अतीत अवस्था थी। पाँच घंटे पश्चात् पू० बाबाका मन प्राकृत धरातल पर आ सका। यह सब देहातीत स्थिति हुई श्रीपोद्दार महाराज द्वारा पुष्प-दानके पश्चात्। लोग देखकर भी नहीं देख पाते थे कि बाबाके गुरुदेव श्रीपोद्दार महाराज कितने अद्वितीय-शक्ति-सम्पन्न थे।

इसी प्रकार एक बार स्वर्गाश्रममें डालमिया-कोठीमें बाबा ठहरे हुए थे। उस दिवस भी श्रीपोद्दार महाराज उनसे बिना मिले हरिद्वार अथवा अन्यत्र चले गये थे। श्रीपोद्दार महाराजकी प्रतीक्षा करते-करते सायंकाल होनेको आया। श्रीबाबा एवं परिवारके सभी जन सचिन्त्य हो उठे थे। बाबा कोठीके बाहर आकर दालानमें बैठ गये। उस दिवस भी यही निर्णय हुआ था कि मध्याह्नपूर्व यदि पोद्दार महाराज नहीं आये तो बाबा गंगा किनारे चले जावेंगे। सन्ध्याकालके पश्चात् श्रीपोद्दार महाराजका फोन आ गया कि वे हरिद्वारसे चल पड़े हैं और ऋषिकेश पहुँचनेवाले हैं। लगभग रात्रिमें ९-१० बजे वे डालमिया कोठी पहुँचे और सीधे बाबासे मिलने गये। दोनोंके प्रेम-मिलनके जो द्रष्टा थे, वे ही उस रसभीनी भावभरी प्रीतिको छू पाये होंगे।

****

विलक्षण दिव्य स्वप्न

एक बार बाबा कुछ चिन्ताओंमें थे, तभी उन्हें एक विलक्षण दिव्यस्वप्न हुआ। भगवान् श्रीकृष्णकी कृपाशक्ति ही इस स्वप्नके रूपमें उनके सम्मुख व्यक्त हुई थी।

स्वप्नमें श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी उनके सामने खड़ी थी। उनका उस समय साधारण पाँञ्चभौतिक शरीर सर्वथा नहीं था। वे अप्राकृत दिव्य भगवती स्वरूप धारण किये हुए थीं। उनके चतुर्दिक विलक्षण रक्तवर्णका तेज निरन्तर प्रस्फुटित हो रहा था। इस विलक्षण तेजपुंज महिला --- जिसकी शरीराकृति पू० पोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी जैसी ही थी --- को देखकर बाबाने स्वप्न एवं जागरण सब समय अपने हृदयमें प्रकट वंशी विमोहन श्रीकृष्णसे ही पूछा कि ये कौन हैं? उत्तर स्वरूप उनके अन्त:करणमें ही एक अति सुमधुर मीठी दिव्य ध्वनि सुनाई पड़ी—'ये ही मेरी समग्र प्रकट-अप्रकट लीलाकी संरचनाकर्त्री, संचालिका, सूत्रधार महायोगमाया हैं। ये अघटन-घटना-पटीयसी सर्वभवनसमर्था मेरी कर्तुम्, अकर्तुम्, अन्यथाकर्तुम् समर्था महाशक्ति हैं। इन महात्रिपुरसुन्दरी आद्याशक्तिको प्रणाम करो।'

इस दर्शनके साथ २५ वर्षके तरुण संन्यासी बाबा एक स्तनपायी शिशु हो गये। उनके भावशरीरका आश्रयालंबन रूप तो स्तन पीनेवाला अबोध शिशु हो गया और विषयालंबन जगज्जननी माँ भगवती हो गयीं। उन दिव्य स्वरूपा माँ जगज्जननीने उस शिशुरूपधारी बाबाको अपनी गोदमें उठाकर अपने वक्षस्थलसे चिपका लिया।

इसके पश्चात् भगवतीने उन्हें ललिता कुंजका दर्शन कराया। अहा! कैसा विलक्षण वह कुंज था।

वहाँ पक्षी समूह ऐसी अप्राकृत स्वरलहरीमें कलरव कर रहा था मानो सम्पूर्ण राग-रागनियाँ वहाँ मूर्त्त होकर सम्मिलित हुई समवेत स्वरमें गायन कर रही हों। वटके विटपोंपर शंखालु आस्तरणका निर्माण कर रही थी। करीर वृक्ष इस तृणराशिको अतिशय प्रेमभरे निहार रहे थे। शंखालु वल्लरीका अधिकांश भाग पृथ्वी पर ही बिखरा था। द्रुम वट अपनी बाहों रूपी शाखाओंको झुकाकर अपने करपल्लव रूपी छोटी टहनियोंको विनीत किये उसे कह रहा था—'प्रिये! सब

कुछ तेरी प्रेमिल आँखोंका ही भ्रम है। इस राशि सुमनावलीसे जो रह-रहकर झलमल कर रही है—यह तेरी छाया ही तो मेरे उरमें थी, अन्य मेरे हृदयमें तेरे सिवा कौन अधिकार कर सकता है?'

इधर सत्वमयी उज्ज्वल अमृतालता नीमके वृक्षोंको आलिंगित किये अति सुखसे स्वच्छन्द फैल रही थी। उसका प्रसार परम मनोहारी था।

और देखो! ये कामिनी लतायें प्रजापतिकी क्रीड़ा केलिकी वार्ता वनदेवीको अति सरस भावसे बखान कर रही थीं। इधर गन्धप्रवाह वायुसे रजनी गंधा भी अपने प्रेमकी अति सरस गाथा निवेदन कर रही थी।

और कुमुदिनी भी क्यों पीछे रहे! वह हिमकरसे उस प्रमत्त हुए अलिकी सब करतूत बखान कर रही थी जो उसके कोषमें बँधकर अब सुषुप्त हो चुका है।

जगज्जननी माँ भगवती ललिताम्बा शशिशेखराकी गोदमें बाबा उसके वक्षस्थलमें मुख सटाये आँचलमेंसे मुख छुपाये टुकर-टुकुर उन कुंजोंकी शोभा निरख रहे थे। बाबाने देखा कि श्रीपोद्दार महाराज उन्हीं कुंजोंमेंसे विल्ववृक्षोंके हरेभरे एक कुञ्जमें विराज रहे हैं। माँ जगज्जननी उन्हें हाथसे संकेत कर रही थी कि इन्हें ही अपना सर्वस्व मान ले।

इसी समय बाबाकी स्थिति जाग्रत अवस्थाकी हो गयी। जिस समय बाबा उपरोक्त दृश्य देख रहे थे उस समय उनकी दशा न जाग्रत थी, न वे स्वप्नमें थे, न ही तन्द्रामें थे। वह कैसी अवस्था थी इसे कोई भी ठीक शब्द नहीं दे सकता। सर्व-साधारणको समझानेके लिये **'स्वप्न देखा'** यह शब्द दिया गया है।

बाबा आश्चर्यचकित विस्फारित नेत्रोंसे विचार करने लगे—यह क्या दृश्य मेरे सम्मुख प्रकट हुआ? इससे मैं क्या अर्थ ग्रहण करूँ? यह मेरी जीवन यात्राकी किस गतिको संकेतित कर रहा है?

इस स्वप्नके बाबाने दो ही अर्थ लगाये? पहला, अवश्य ही मुझे मेरे आगेके पथ-निर्देशके लिये भगवती आद्याशक्ति त्रिपुरसुन्दरीकी उपासना करनी चाहिये। दूसरा श्रीपोद्दार महाराज ही मेरे वर्तमान और भविष्यके एक मात्र पथ-प्रदर्शक होंगे।

****

गुरुदीक्षा

जिस वन में गाय चराते हो, मुरली मुखरित जो है प्रियतम।
उसके उन निभृत निकुंजों के सर्वथा अगम थल में प्रियतम।
जा सकूँ, अतुल वह शक्तिपात तुमने पिंजर छड़ से प्रियतम।
था किया, सदा के लिये मिटा भिखमंगीपन मेरा प्रियतम।

(हे प्रियतम! जिस वनमें तुम नित्य गायें चराने जाते हो, जो सदा मुरली निनादसे मुखरित रहता है, उस वनके निभृत निकुंजोंमें जो सर्वथा अगम्य स्थल हैं (जहाँ शुक सनकादि सर्वपूज्य ऋषियोंका भी प्रवेश नहीं, जो ब्रह्मादि देवोंकी पहुँचके भी परे हैं) उन निकुंज स्थलियोंमें मेरा प्रवेश हो सके, मैं उनमें जा सकूँ वह शक्तिपात तुमने पिंजर स्थलकी छड़ोंसे (अर्थात् अपने हनुमानप्रसाद पोद्दार रूप शरीरके हाथोंसे) किया। हे प्रियतम! उस कृपा दानके फलस्वरूप तुमने मेरा सदा-सदाके लिये भिखमंगीपना मिटा दिया।)

अध्यात्म साधनामें गुरुका स्थान अन्यतम होता है। माताके गर्भमें जिस प्रकार बीज-रूपमें सन्तान रहता है और क्रमशः विकसित होकर अंग प्रत्यंगसे परिपुष्टता प्राप्त करता है, इसके पश्चात् प्रसव क्रियाके माध्यमसे बाहर आकर इन्द्रिय-गोचर रूपमें प्रकट होता है, ठीक उसी प्रकार गुरु स्वयं अपने आपको हृदय क्षेत्रमें दीक्षाके रूपमें स्थापित करता है, फिर शिष्यके द्वारा यथाविधि शोधित और रक्षित होकर शिष्यके हृदयसे अपने आपको ही प्रकट करता है।

सद्गुरु पूर्ण है, वह सर्वज्ञ है, वह पूर्ण एवं सर्वज्ञान-शक्ति-समन्वित है, वह पूर्ण एवं सर्वकर्ता है, उसमें पूर्ण ज्ञान एवं पूर्ण क्रियाके समन्वयसे पूर्ण विज्ञान शक्ति भी आविर्भूत होती है। वह असंभव संभव कर सकता है। उसकी इच्छाशक्ति महाइच्छासे ऐकमेक होती है। उसे क्रिया करनेकी आवश्यकता ही नहीं, उसके संकल्पसे स्वतः कार्य होता है। उसके मनमें कोई कार्य करनेकी इच्छा नहीं होती, सभी कार्य महाइच्छाके कारण होते रहते हैं। उसमें अपना संकल्प भी नहीं होता, क्योंकि वह अहंकारशून्य होता है। अतः महासंकल्पका ही उसमें बिम्ब पड़ता है। वही उसकी नियंतृ शक्ति होती है।

बाबाने मई ११, १९३९ ई० को पोद्दार महाराजका अखण्ड जीवन-व्यापी संग करनेका व्रत लिया था। यह घटना लगभग जून मासकी है। बाबा

इन दिनों व्रजभाव-साधनाकी ऐसी प्रश्नावलियोंमें उलझे थे जिनका समाधान एक मात्र गुरु ही कर सकता है। ऐसा गुरु जो सिद्ध स्थितिमें हो। शास्त्रके अवलोकन-अध्यापनसे वे प्रश्न हल नहीं हो सकते थे। विचार शक्ति भी उन समस्याओंको सुलझा नहीं सकती थी। वे प्रश्न हल हो सकते थे मात्र सिद्ध गुरुकी अहेतुकी कृपासे ही। पर जो वास्तवमें सिद्ध है, वह अपनेको सिद्ध बतलानेके लिये व्यक्त होगा नहीं और जो व्यक्त स्तरपर अपनेको सिद्ध घोषित करते हैं, उनमेंसे शायद ही कोई विरला सिद्ध हो।

बाबाके सामने भी कुछ ऐसी समस्याएँ थीं जिनका समाधान वे पाना चाहते थे, परन्तु वे निरुपाय थे। श्रीपोद्दार महाराज सिद्ध स्तरके सन्त थे, पर वे गुरुपदकी भावनाको अंगीकार करनेकी भावनासे कोसों दूर थे।

उन दिनों बाबा उस कुटीरमें रहा करते थे, जो श्रीगंगाबाबू (बाबू गंगाशरण सिंह, गीताप्रेसके कार्य-प्रबंधक)ने अपनी साधना करनके लिये निर्माण करायी थी, एवं उस समय रिक्त ही पड़ी थी। बादमें बाबाके लिये स्वतंत्र कुटिया बन गयी। अब इसमें श्रीहरिवल्लभजी ठहरा करते थे। बाबा विचारमग्न अपनी कुटियाके बाहर बैठे थे। विचारकी गहरी रेखाएँ उनके मुख मंडलपर अंकित थीं। उसी समय बाबाके सामनेका दृश्य बदला। उन्होंने देखा कि मुसकाते हुए पू० पोद्दार महाराज आये हैं। वस्तुतः वे सशरीर आये अथवा नहीं आये, कहा नहीं जा सकता, परन्तु बाबाके लिये तो वे आये ही थे। बाबाकी उस समय सर्वथा अप्राकृत स्थिति थी। आते ही उन्होंने पूछा—'बाबा! आज आप गंभीर कैसे बैठे हैं?'

बाबाने उनसे उत्तरमें कहा—मेरे मनमें एक गंभीर समस्या है। ब्रजभाव सम्बन्धी एक उलझन है, जिसका समाधान मात्र गुरुकृपासे ही संभव है परन्तु मैं कहीं जानेवाला नहीं और इस प्रकारका सौभाग्य दिखलायी देता नहीं कि सिद्ध स्तरका कोई संत स्वयं आकर मेरे गुरुपदको स्वीकार करे। सिद्ध गुरुके बिना मेरे प्रश्नोंका समाधान संभव नहीं। आप सब प्रकारसे समर्थ हैं, परन्तु आप मेरा गुरुपद स्वीकार करेंगे नहीं।

श्रीपोद्दार महाराजने पूछा—'बाबा! आपकी समस्या क्या है?'

बाबाने कहा—'तो क्या आप मेरे लिये गुरुपद स्वीकार कर सकते हैं?'

श्रीपोद्दार महाराजने कहा—'यह कौन सी बड़ी बात है? यह मैंने कब

कहा कि मैं किसीको शिष्य बनाऊँगा ही नहीं।'

बाबाको बहुत ही विस्मय हुआ। उन्होंने आश्चर्य और उल्लास मिश्रित वाणीमें तुरन्त पूछ लिया—'आप कहीं मुझसे विनोद तो नहीं कर रहे हैं? मैं ऐसा इसलिये कह रहा हूँ कि आप किसीको शिष्य रूपमें स्वीकार नहीं करते। सच-सच बताइये कि क्या आप मेरे लिये गुरुपद स्वीकार कर लेंगे।'

श्रीपोद्दार महाराजकी आँखोंकी मूक भाषा बाबाके लिये स्वीकृति प्रदान कर रही थी। फिर भी श्रीपोद्दार महाराजने कहा आप अपनी दोनों हथेली मेरे सामने फैलाइये।

वह दृश्य मनोहर था जिसमें गुरुदेव बने थे तुम प्रियतम।
थे पकड़ लिये वे हाथ लगी रहती मेंहदी जिनमें प्रियतम।

बाबाने अपनी दोनों हथेली उनके सामने फैला दी। फिर उन्होंने हथेलियोंको उलट देनेकी आज्ञा दी जिससे नख ऊपर हो जावें। पूज्य गुरुदेवने अक्षरशः उनकी आज्ञाका पालन किया। नखवाला भाग आकाशकी ओर एवं हस्थ रेखाओं वाला भाग पृथ्वीकी ओर कर दिया। इसके पश्चात् वे अपनी अँगुलीसे बाबाकी अँगुलियोंके नखोंको स्पर्श करने लगे। पहले कनिष्ठिकाके नखका, फिर अनामिकाके, फिर मध्यमाके, तब तर्जनीके, और सबसे पश्चात् अंगुष्ठके नखोंको स्पर्श किया। इसी प्रकारसे फिर दूसरी हथेलीकी सभी अंगुलियोंके नखोंका स्पर्श किया। स्पर्शकी क्रियाके समाप्त होते ही श्रीपोद्दार महाराजने हँसते हुए कहा कि लीजिये, हो गया। इस प्रकार कहकर वे हँसते हुए चले गये।

उनके स्पर्शने चमत्कार कर दिया। बाबाकी सारी उलझनें तत्काल समाप्त हो गयीं। उनके सभी प्रश्न समाधान हो गये। उसी दिन स्वयमेव उन्हें उनके सभी प्रश्नोंका हल मिलता चला गया। भविष्यमें उनके लिये फिर कोई प्रश्न, कोई समस्या रही ही नहीं। उनके उस स्पर्शका ऐसा प्रभाव हुआ कि कालान्तरके सुदूर भविष्यमें व्रजभावकी साधना सम्बन्धी कोई भी व्यक्ति कोई भी समस्या उनके सम्मुख रखता, उस समस्याका तुरन्त हल उन्हें स्फुरित हो उठता।

यह सर्वथा सत्य बात है कि समर्थ गुरुकी कृपाका आश्रय मिलते ही सभी प्रश्न हल हो ही जाते हैं। कृपाश्रितकी स्वयंकी सारी समस्यायें तो दूर हो ही जाती हैं, इसके अतिरिक्त समर्थ गुरुकी कृपा उस आश्रित जनको इतना सामर्थ्य प्रदान कर देती हैं कि दूसरोंकी समस्याओंका सभी समाधान कर दे,

उनकी विघ्न-बाधाएँ भी दूर हो जावें। वह कृपाश्रित स्वयं तो तरता ही है, दूसरोंको भी तार देता है। इसी क्षमताकी ओर श्री देवर्षि नारदजीने अपने भक्तिसूत्रमें कहा है—

स तरति स तरति स लोकांस्तारयति

जैसे जन्म-जन्मके बुभुक्षितको कल्पतरु वृक्ष मिल जाय, जैसे मृत्यु मुखमें पड़े व्यक्तिको अमृत मिल जाय, ऐसी पूर्ण समाधानकी दशा उस समय बाबाकी थी।

गुरुका शिष्यके प्रति कितना महान असीम वात्सल्य होता है, जो स्नेह एवं वात्सल्य सुख श्रीपोद्दार महाराज द्वारा उस दिन बाबाको मिला वह वास्तवमें अकथ्य, अवर्णनीय है।

श्रीपोद्दार महाराजके जाते ही बाबाके चिन्तनकी धाराने एक नया मोड़ ले लिया। बाबा सोचने लगे क्या यथार्थतः पोद्दार महाराज पाँञ्चभौतिक शरीरसे मेरे पास आये थे अथवा भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सर्वभवन-सामर्थ्यसे श्रीपोद्दार महाराजका रूप रखकर उन्हें दीक्षा दे गये। छानबीन करने पर ये ही तथ्य परिपुष्ट हुए कि श्रीपोद्दार महाराजने सूक्ष्म शरीरसे भले ही यह कार्य किया हो, स्थूल शरीरसे तो वे सर्वथा नहीं ही आये थे।

अगणित अनुभूतियोंका प्रकाश

क्या कहूँ तथा क्या नहीं कहूँ, मैं समझ नहीं पाती प्रियतम।
पिंजर को सरका-सरका कर लीला तुमने जो की प्रियतम।
लजवन्ती लतिका सी अगणित अनुभूति राशि वह है प्रियतम।
वाणी छू लेगी यदि उसको, सिकुड़ेगी ही वह तो प्रियतम।

हे प्रियतम! तुमने अपने (श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार रूप) शरीर पिंजरको सरका-सरकाकर (अर्थात् मेरे निकट ला-लाकर) जो लीलाएँ की है, उनके संबंधमें मैं क्या कहूँ तथा क्या नहीं कहूँ, मैं कुछ भी समझ ही नहीं पाती। ये मेरी एक दो नहीं, राशि-राशि अनुभूतियाँ गिनी नहीं जा सकतीं। अगणित हैं, यदि उनको वाणी छुएगी तो जो अनुभूतिकी पवित्रता, मर्यादा और सौन्दर्य है उसे पूरा व्यक्त न कर पानेके कारण वह संकोचमें गड़ जायेगी। हे प्रियतम,

हाय! मैं क्या कहना चाहती थी और जो कह गयी वह तो सर्वथा ही विकृत व्यक्त हो गया एवं जो व्यक्त करना चाहिये था, वह व्यक्त ही नहीं कर पायी।

श्रीपोद्दार महाराज लोगोंके लिये विद्वान् थे; बुद्धिमान थे, उन्हें हजारों लोग महापुरुष मानते थे, अनेकों ऊँची कोटिके महात्मागण भी उनमें योगकी ऊँची से ऊँची विभूतियोंको देखकर अतिश्रद्धासे नमित हो जाते थे। वे अपनी आत्मगोपन-वृत्तिकी प्रबलतासे सदा दीन, विनयी, अन्य महात्माओंके प्रति श्रद्धालु, सेवा परायण बने रहते थे, सबके सम्मुख अपनेको हीन, हेय, तुच्छ ही व्यक्त करते थे, परन्तु सूर्य अपनेको कितना ही कुहरा उत्पन्न कर ढ़के, वह प्रकट हो ही जाता है, इसी प्रकार उनकी विभूतियाँ विख्यात (प्रकट) हो जाती थीं।

श्रीपोद्दार महाराजमें मानवीय गुण भी कम नहीं थे। वे राजनेताओंकी कुशलता, उच्चकोटिकी नीतिज्ञतासे युक्त थे। वे बहुश्रुत थे, बहुविद् एवं आशु कवि थे। उनमें दुर्धर्ष तेज था, जो मात्र एक बारके ही संपर्कमें आनेपर किसी बड़े-से-बड़े व्यक्तिको भी प्रभावित कर लेता था। परन्तु बाबाके लिये तो वे अंधकी लकड़ी, कंगालका धन, प्यासेका पानी, भूखेकी रोटी, निराश्रयके आश्रय, निर्बलके बल, प्राणोंके प्राण, जीवनके जीवन, देवोंके देव, गुरुओंके गुरु, सिद्धोंके सिद्ध, ईश्वरोंके ईश्वर थे। बाबाके लिये श्रीपोद्दार महाराज सर्वस्व थे।

बाबा श्रीमद्भगद्गीतोक्त इस श्लोकको सदा स्मरण रखते थे—

नाऽहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्यं एवं विधोर्द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

(हे अर्जुन! तू उच्चकोटिका तपस्वी है, परन्तु न तो मैं वेद विद्याके द्वारा, न ही कठोर तपसे, न सर्वस्व दानसे, न ही अवश्मेघादि महान यज्ञोंसे इस प्रकार मिल पाता हूँ जैसा अपरोक्ष अनन्य भक्तिसे मिल पाता हूँ। प्रविष्ट होना, एकात्म हो जाना संभव है (अन्यथा तो समग्र बुद्धियोंका साक्षी होनेसे मुझे बुद्धि द्वारा स्पर्श भी नहीं किया जा सकता।)

श्रीपोद्दार महाराजकी यावज्जीवन छत्रछायामें बाबाने बहुत ही सावधानीपूर्वक अपने साधन-पथकी रक्षा की। मार्गमें बड़ी-बड़ी बाधाएँ मुख खोले सुरसाकी

तरह खड़ी थी। विद्या, बुद्धि, तप, दान, यज्ञ आदिके अभिमानकी बड़ी-बड़ी घाटियाँ थीं, भोगोंकी अनेक मनहरण वाटिकाएँ थीं; पाण्डित्य, विद्वत्ता एवं शास्त्रज्ञानके अभिमानका जाल माया बिछाये हुए थी। बाबा तो असाधारण विद्वान, लेखक, कवि, वक्ता, बहुभाषाविद्, कुशल संगठनकर्ता, तपोनिष्ठ, सर्वशास्त्रविशारद, ब्राह्मण शरीर थे। माया कहीं भी उन्हें भटकानेमें समर्थ थी। परन्तु गुरुश्रद्धाका पाथेय, एकान्त गुरुभक्तिका कवच पहनकर सन्तप्रेमको अपना अंगरक्षक सरदार बनाकर वे मायासे निर्भय थे।

अपने परम प्रेमास्पद भगवान् श्रीकृष्णको पानेके लिये उन्हें इन्हीं गुणोंकी आवश्यकता थी। कोरे सदाचारका अभिमान अथवा थोथे बुद्धिवादसे श्रीकृष्ण-प्रेम तो उन्हें मिलनेवाला था नहीं।

बाबाके हृदयकी एक बहुत बड़ी महिमा थी कि उनकी दृष्टिमें पू० पोद्दार महाराजके देहमें और उनके इष्ट श्रीकृष्णमें कहीं कोई भेद नहीं था। उनके परम तार्किक मनने यह निर्विवाद सत्य मान लिया था कि किसीको धनी ही धन दे सकता है। श्रीपोद्दार महाराज स्ववस्तुका ही किसीको चरण-स्पर्श करके दान कर सकते हैं। जो वस्तु पर है वह दी ही नहीं जा सकती। अतएव परात्पर श्रीकृष्ण श्रीपोद्दार महाराजके लिये 'स्व' हैं, 'पर' कदापि-कदापि नहीं हैं। इसीलिये बाबाने अपने भावोंको श्रीकृष्ण-सुख-सुखिया बनानेका यही आदर्श रखा कि उनका मन, बुद्धि, चित्त एवं इन्द्रियाँ-ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियोंकी सम्पूर्ण चेष्टा श्रीपोद्दार महाराजको समर्पित हो।

बाबाका पोद्दार महाराजके प्रति आदर्श आनुगत्य, आदर्श प्रेम, आदर्श त्याग, आदर्श सहिष्णुता, आदर्श समर्पण, आदर्श सेवाभाव जीवनपर्यन्त बना रहा।

बाबा कहा करते थे कि श्रीपोद्दार महाराजने 'हुआ समर्पण प्रभु चरणोंमें, मन की बात मनहिं भर जाने, सौंप दिये मन प्राण तुम्हीं को' आदि जो ऊँचे समर्पणभावी पद लिखे हैं—वे सभी मूलत: उनके ही भावोंको उनके काष्ठ-मौनके बाद शब्द दिये हैं।

एक बार उनसे जब यह पूछा गया कि 'बाबा! इस परमोच्च कोटिके समर्पण भावका आपमें अभ्युदय कबसे प्रारम्भ हुआ? इस प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने कहा—मैं अक्टूबर-नवम्बर मासमें श्रीपोद्दार महाराजके साथ डालमिया दादरी गया हुआ था। दादरीमें भगवान् श्रीहनुमानजीका एक मन्दिर था। वहाँ रामायण

पाठ हो रहा था। मैं अपनी पूजामें बैठा हुआ था, अचानक मेरे अन्त:करणमें विराजित श्रीकृष्णने मेरा ध्यान गायन होती हुई एक चौपाई पर केन्द्रित कर दिया। वह चौपाई थी-

एक हि धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा॥

इस चौपाईको सुनते ही बाबामें गोपी-भावकी जाग्रति इतनी प्रगाढ़ हो गयी कि वे बराबर ही पुरुष भावको भूले रहने लगे। जो भाव १९३७ में गीताप्रेसके कमरेमें थोड़े कालके लिये जाग्रत हुआ था यहाँ यह भाव सदाके लिये स्थिर हो गया। बाबाका यह प्रमदा नारी-भाव लिखते-लिखते अपनेको प्रगाढ़ स्त्री-भावमें अनुभव करनेके कारण स्त्रीलिंगकी क्रियायें प्रयुक्त कर दिया करते थे।

उस समय वे सोचने लगे—'हाय! इस विश्वमें मेरा कौन है? मेरे जन्म मरणके एक ही तो साथी हैं। मेरी जीवन-यात्रामें एक ही संगी हैं, और वे हैं श्रीपोद्दार महाराज रूपधारी श्रीकृष्ण। बस उसी क्षण मेरे मनमें निश्चय हो गया कि अपने जीवनका क्षण-क्षण तथा अपनी शक्तिका कण-कण श्रीपोद्दार महाराजकी रुचि पूर्तिके लिये ही व्यतीत कर दूँगा। जगतमें जो भी मेरा प्रेम, विश्वास एवं आत्मीयताका संबंध है, सब ओरसे सभी बंधनोंको खोलकर मैं मात्र श्रीपोद्दार महाराजके चरणोंसे बाँध दूँगा।

'श्रीकृष्ण कोई पदार्थ थोड़े ही हैं जो कोई रुपये, पैसे, जमीन, मकानकी तरह किसीको प्रदान कर दे। श्रीपोद्दार महाराजका सच्चिन्मय अपरोक्ष अस्तित्व ही तो श्रीकृष्ण हैं। वे श्रीकृष्ण ही वृन्दावन, गोपी और श्रीराधा हैं। अत: मेरा संसार तो मात्र श्रीपोद्दार महाराज ही हैं। मेरी सम्पूर्ण मति, गति एवं प्राप्ति ये ही हैं। अवश्य ही ये मेरे भाव मैं सबसे संगोपित रखूँगा परन्तु अन्तर्हृदयसे मेरा मन, तन, योग्यता, मेरी गुणराशि, सबको उनको ही समर्पित होती रहेगी।'

बाबाके स्वभावकी एक विशेषता थी कि वे मात्र भावनापर विश्वास नहीं करते थे। भावुकता जिसकी कोई ठोस भूमि न हो, उनकी दृष्टिमें मात्र पागलपन और दंभका योग ही थी। वे यथार्थताके समर्थक थे। वे सोचते थे कि मुझे मात्र श्रीकृष्णके ही दर्शन हुए हैं तो श्रीकृष्णकी ही सेवा करूँगा। उनके तार्किक मनमें इसका दृढ़ विश्वास था कि सम्पूर्ण व्रजलीला, चाहे कुञ्ज, निकुञ्ज

गोष्ठ कुछ भी हो, श्रीकृष्णमें ही, श्रीपोद्दार महाराजमें ही ओत-प्रोत है। जब श्रीकृष्ण मुझे सशरीर पोद्दार महाराजके रूपमें प्राप्त हैं और मेरे चित्तमें भी उनका वंशीधारी कदम्ब वृक्षके नीचे खड़ा स्वरूप नित्य अविचल स्वप्न-जागरण सब समय अखण्ड स्थित है तो सारी लीला उनकी कृपासे अपने आप प्रकट होती जायगी। मुझे मनोजनित कल्पनाका संसार कदापि नहीं बनाना है।

अत: वे जब 'यमुना' शब्द पर दस बीस सेकेण्ड अपना मन निक्षिप्त करते तो वे अपने हृदयस्थल श्रीकृष्णके सम्मुख मचल पड़ते। 'मुझे यथार्थमें ही यमुनाजीके दर्शन कराओ। जब मैंने तुम्हारा कभी किसी चित्रको लेकर ध्यान नहीं किया, तुम गोरे-काले जैसे हो जब मेरे दृष्टि पथमें अपने आप आये तो मैं किसी प्राकृत जलका क्यों ध्यान करूँ, यथार्थ सच्चिन्मयी जो श्रीयमुना हैं उन्हें मेरे सम्मुख प्रकट करो।

मुझे सच्चिन्मय वृन्दावन, तुम्हारे परम धामके दर्शन कराओ, सच्चिन्मय गिरिराज पर्वतके दर्शन कराओ। वे श्रीपोद्दार महाराज रूप श्रीकृष्णके सम्मुख ही अपनी मानसिक सब माँग रखते थे।

साथ ही साथ वे श्रीकृष्णकी रुचिमें पूर्णतया समर्पित भी थे और सोचते थे, यदि श्रीकृष्णकी रुचि अनन्त जन्मोंतक मुझे नरकमें रखनेकी हो तो मैं कुंज, निकुंज, वृन्दावन, गिरिराज, राधाकुण्डकी माँग ही क्यों रखूँ। उनकी रुचिके विपरीत मुझमें कोई भी इच्छाका, संकल्पका, स्फुरणका जागरण भी क्यों हो?

वे तो उनके ही प्राप्तरूपका इकटक पान करते और उनकी रुचिको ही अपना सफल जीवन मानते थे। उनमें विलक्षण समर्पण था। वे तो श्रीकृष्णसे ही पूछते—'तुम्हें मेरी गोरी आकृति प्रिय है, या काली। यदि तुम्हें मुझे गोरा बनानेमें सुख अनुभव होता हो तो मेरे अंग गोरे रहें अन्यथा जो तुम्हें रुचिकर हो, वैसा ही मेरा रूप गढ़ना। जो गुण तुम्हें रुचिकर लगें वे ही गुण प्रदान करना। यदि मुझे घोर कुरूपा, गुणहीना, दुश्शीला रखनेमें एवं अपने विनोदकी सामग्री बनानेमें ही तुम्हें सुख हो तो मुझे वैसी ही बना देना। जो कला तुम्हें आनन्ददायिनी हो, उसी कलामें मुझे पारंगत करना। इतना ही नहीं मेरा हँसना-बोलना, मैत्री करना, जो भी स्वभाव, प्रकृति, तुम्हें रुचिकर हो मैं वैसी, वैसी सदा वैसी ही बनी रहूँ। मुझमें आपकी रुचिसे भिन्न कुछ भी, कभी भी न हो। ऐसा विलक्षण हेतुरहित उनका श्रीकृष्णके साथ प्रेम था। (**यहाँ यह बात बार,**

बार पुनः प्रकट कर देता हूँ कि श्रीपोद्दार महाराजके सिवा उनके श्रीकृष्ण अन्य कुछ भी नहीं थे।)

इसीलिये उनका मधुरतम मनभावन प्रेम नित्य निरन्तर सहज ही बढ़ता चला गया। उनके प्रेममें न झूठी अनुनय विनय थी, न ही कोई गुणजनित हेतु था। श्रीकृष्ण चाहे कैसा भी अपराध करें, बाबाका प्रेम उनसे घटता ही नहीं था, उन्हें श्रीकृष्णसे न भोगकी स्पृहा थी, न ही मोक्षकी, उन्हें तो अपना सर्वस्व उनपर न्यौछावर भर करना था। उनका प्रेम कारणरहित था, उपाधिरहित था, मलरहित था, बाहरसे केवल बखान करनेवाला नहीं, मात्र मनकी वस्तु था, नित्य था, सीमारहित था, परिमाणरहित एवं दोष रहित था।

एक दिन श्रीपोद्दार महाराजके पास बाबा बैठे थे। श्रीपोद्दार महाराज उन्हें किसी ग्रन्थसे उदाहरण पढ़कर सुनाने लगे जिसमें श्रीकृष्ण राधारानीको यमुनाका स्वरूप दर्शन कराते हुए कहते हैं कि तेरा एवं मेरा प्रेम ही यह कालिन्दी यमुना है। श्रीकृष्ण कहते हैं—'यमुनाका एक किनारा मैं हूँ एवं दूसरा किनारा तू है। मेरी तेरे प्रति प्रीति मुझ एक तटसे बहती हुई तुझ दूसरे तट तक जाती है, फिर तुझे आत्मसात् करती हुई तेरी ही हो जाती है। फिर तेरी प्रीति हुई वही रस-धारा पुनः उमड़ती है और मुझ दूसरे तटको आप्यायित करती मेरी ही प्रीति सम्पदा बन जाती है। यह हम दोनोंका प्रीति रस-प्रवाह ही तो यमुना है।

श्रीपोद्दार महाराज यह रस वर्णन कर ही रहे थे उसी समय बाबा जहाँ बैठे थे, वहीं एक परम निर्मल चिन्मय रस-प्रवाह बह उठा। यह रस प्रवाह ही परम शोभामयी यमुना बनकर उनके सम्मुख ही लहराने लगा।

इसी प्रकार बाबाने एक दिवस हृदयस्थ श्रीकृष्णसे प्रार्थना की—प्राणवल्लभ! तुम कहते हो और यह मेरा अनुभूत सत्य भी है कि श्रीपोद्दार महाराज ही सचल वृन्दावन हैं, तब तो इनके चिन्मय भूमितत्वमें ही महाप्रभु चैतन्यदेव, भक्तिमती विष्णुप्रिया, महाप्रभु वल्लभाचार्य, भक्तसम्राट सूरदास, श्रीपाद सनातन एवं रूप गोस्वामी आदि इस शरीरके किसी न किसी भागमें अवश्यमेव अवस्थित होंगे ही। फिर मुझ पर इन सब वैष्णवोंकी कृपावर्षा कर दीजिये न! नाथ! यदि मेरी इच्छामें आपकी रुचिकी अनुकूलता हो, तभी इस इच्छाकी पूर्ति हो अन्यथा मेरी इच्छाको अवश्य अवश्य आग लगा देना।

बाबाके मुखसे यह प्रार्थना होते ही बाबाको श्रीपोद्दार महाराजकी कृपासे वहीं गोरखपुरमें ही वृन्दावनकी दुर्लभ भजन-स्थलियों, इनमें पुरातनकालके भजननिष्ठ सिद्ध संतों, विख्यात मन्दिरोंके श्रीविग्रहों, लीला स्थलियों एवं श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु आदिके प्रकट दर्शन हुए।

बाबा कहते थे कि श्रीकृष्णकी विचित्र लीला होती थी। पहले मुझे ऐसा अनुभव होता कि श्रीपोद्दार महाराज आये हैं और तब मुझे ये विलक्षण अनुभव होते।

पूज्या माँ—रामदेई पोद्दार

(श्रीभाईजीकी धर्मपत्नी—पूज्या माँ रामदेई पोद्दारके प्रति बाबाके भावका यह लेख साधु-कृष्णप्रेमजीका है)

बाबा श्रीपोद्दार महाराजके साथ उनके पूर्वजोंके जन्मस्थान रतनगढ़ (राजस्थान) में चार-पाँच वर्ष १९४० से १९४५ ई० के मध्य तक रहे। श्रीपोद्दार महाराजकी पैतृक निवास-स्थलीके पास ही जहाँ एक अन्य सेठ सर्राफोंकी हवेली थी, वहाँ उन्हें यमुना प्रवाह लहराता नेत्रोंसे दृष्टिगोचर होता था। बाबाको पोद्दार महाराज सर्वदेवमय दृष्टिगोचर होते थे। उनकी धर्मपत्नीमें उन्हें प्रत्यक्ष शशिशेखरा माणिक्य मुकुट धारण किये पूर्ण रक्तवर्णा चन्द्रानना जगज्जननी आद्याशक्ति महात्रिपुरसुन्दरी भगवती पूर्णतया प्रकट दिखती थीं।

मैं उन दिनों युवक था। पू० अ० सौ० माताजी (श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी) बाबाको भिक्षा करा रहीं थीं। किसी विषयमें मैंने (लेखक) पू० माताजीकी अवज्ञा कर दी। बाबाने जैसे क्रोधमें भरे हों, वैसी तेज आवाजमें मुझसे पूछा—तू जानता है, तूने किसकी अवज्ञा, तिरस्कार किया है? ये कौन हैं? मैंने कहा—बाबा! ये मेरी बड़ी मामी हैं! मैं श्रीपोद्दार महाराजको बड़े मामाजी कहता था। बाबा कड़ककर बोले—'मेरी दृष्टिसे देख! अपनी अंधी फूटी आँखसे क्या सत्य देख पावेगा? और उन्होंने उनका साक्षात् चन्द्रशेखरा, माणिक्य मुकुट धारणकर्त्री त्रिनेत्रा स्वरूपका दिग्दर्शन मेरे सम्मुख किया। उन्हें वे कभी चतुर्बाहु समन्विता दिखतीं एवं कभी द्विभुजा पराम्बा रूपमें दृष्टिगोचर होतीं। लगातार ५३ वर्षों तक बाबा उनमें दिव्य परम चिन्मय मातृस्वरूपाके ही दर्शन करते रहे।'

मेरे उस दिनके अपराधको क्षमा करानेके लिये उन्होंने मुझसे स्वयं एक पाठ ललिता सहस्त्रनामका सुना, बिल्ववृक्षके नीचे भगवतीकी पंचोपचारसे पूजा करवायी। वे यदाकदा स्पष्ट कहते थे जिन लीलाविधातृ शक्तिके बलपर मैं तुम्हारा तत्काल दूसरा जन्म दिव्य वृन्दावनधाम (गोलोक) में कराना चाहता हूँ, उनकी तुम अवज्ञा करो, यह मेरे लिये सर्वथा असह्य हो जाता है।

यह घटना सन् १९४८ ई० की है। मैं इन्टरमीडियेटकी संगीत परीक्षा देने काशी गया था। मेरी परीक्षा जिस दिन समाप्त हुई, उसके दूसरे दिन शिवरात्रि थी। बाबा गोरखपुरमें शिवरात्रिके दिन निशापर्यन्त पूजा कराया करते थे। शिवरात्रिकी पूजामें मेरे द्वारा श्रीविद्यापतिके रचित मैथिली भाषाके शिवविवाहके पद हर वर्ष गाये जाते थे। बाबा मनमें सोच रहे थे कि मैं परीक्षा देकर रात्रिको गाड़ीमें बैठकर सुबह शिवरात्रिके दिवस गोरखपुर अवश्य पहुँच जाऊँगा और निर्विवाद पूजामें संकीर्तनकी सेवा कर दूँगा। उन्होंने मेरी दिनभर एवं रात्रिभर प्रतीक्षा भी की। मैं शिवरात्रिके दिनकी अपेक्षा दूसरे दिवस सायंकाल बससे गोरखपुर पहुँचा। मैं उन्हें प्रणाम करने ज्योंहि उनके सम्मुख गया तो उन्होंने मुझसे जाते ही जिज्ञासा की—'अरे, तेरी परीक्षा तो परसों ही सम्पन्न हो गयी थी, कल क्यों नहीं आया?'

मैंने उत्तर दिया—'बाबा! शिवरात्रिपर काशीधाममें रहनेके लोभसे रुक गया था। रात्रिमें भगवान् विश्वनाथके मन्दिरमें पूजा-दर्शन किये, वहीं रात्रि-जागरण किया, अन्नपूर्णादेवीके भी दर्शनोंका सौभाग्य मिला।'

उन्होंने मुझे बहुत निराशभरे स्वरमें एकदम भर्त्सनापूर्वक झिड़ककर कहा—'क्या खाक सौभाग्य मिला? माँ अन्नपूर्णा और भगवान् विश्वनाथ गत रात्रि काशीमें थे ही नहीं। स्वयं काशीधाम ही या तो यहाँ अवतरित था, अथवा भगवान् वहाँसे यहाँ चले आये थे।' मैं उनकी बात सुनकर स्तब्ध हो गया।

फिर उन्होंने मुझे अपना सम्पूर्ण अनुभव खोलकर बतलाया। वे कहने लगे—'भैया! पूजाका प्रारंभ श्रीपोद्दार महाराज एवं अ० सौ० माताजी द्वारा हो, यह मेरे मनमें विचार अवश्य आया था। परन्तु क्योंकि मेरे निमंत्रणपर पू० पोद्दार महाराज कभी अनुकूल उत्तर नहीं देते थे, अतः मैंने श्रीपरमेश्वर प्रसादजी फोगला (पोद्दारजीके जामाता) एवं उनकी पुत्री (सौ० सावित्रीबाई) को ही पूजा करनेके लिये चयन कर लिया और श्रीफोगलाजीको मात्र पूजा प्रारंभ

करनेकी अनुमति लेने उनके पास भेजा था।'

श्रीपोद्दार महाराजने जाते ही श्रीफोगलाजीसे कहा—' थाँरो बाबो आज मेरेसे पूजा कोनी करवावै?' क्या आपका बाबा आज मेरेसे पूजा नहीं कराना चाहता?) उनकी ऐसी प्रतिक्रिया देखकर श्रीपरमेश्वरजी सकपका गये, उन्होंने प्रस्ताव किया—आप चलिये। और वे सचमुच ही स्वयं सावित्रीकी माँ (पू० अ० सौ० माताजी) को लेने गये और तत्परतापूर्वक पूजार्थ आ गये। उन्होंने अति मनोयोगपूर्व एक पूजा सम्पन्न की। और सम्पूर्ण पूजामें बाबाको श्रीपोद्दार महाराज अपनी पोद्दार-देह तथा आकृतिमें सर्वथा दिखे ही नहीं। वे साक्षात् वर-वेषमें भगवान् शंकर ही उनकी दृष्टिमें आते रहे। बाबा आश्चर्यचकित थे कि यह क्या हो रहा है?

उनकी धर्मपत्नी अ० सौ० रामदेई माताजी भी साक्षात् भगवती पार्वतीके रूपमें ही उन्हें दिखती रहीं।

इधर पंडित लोग रुद्राष्टाध्यायीका पाठ कर रहे थे, परन्तु बाबाको उन्हें हिमालय प्रदेशमें भगवान्के विवाहकी लीला प्रत्यक्ष दिख रही थी। एक-एक देवता—भगवान् नारायण, भगवती लक्ष्मीजी, ब्रह्माजी, भगवती सरस्वती, सब देव-देवांगनाएं, न जानें कैसी शोभा लिये समुपस्थित थीं, क्या कहा जाये?

एक पूजा पूरी करके श्रीपोद्दार महाराज बाबाके सम्मुख बोले—'बाबा! अभी भी मुझे कल्याणके अंतिम प्रूफ देखने हैं, सुबह ही मशीनमें नहीं जायेंगे तो मशीनें खाली रहेंगी।' बाबाने उन्हें साश्रु-नयन विदा किया। परन्तु उनके रंगमंचसे हटते ही वह विवाह-दृश्य भी लुप्त हो गया। बाबा कह रहे थे कि जबतक वे बैठे रहे, इसी बिल्ववृक्षके नीचे भगवान् विश्वनाथ और माँ अन्नपूर्णा स्थित थीं। उनकी शिव-पार्वती-विवाह-लीला पूरी यहाँ सम्पन्न हुई।

बाबा कह रहे थे कि जब उन्हें बाह्य ज्ञान हुआ तो उन्हें मेरी (लेखककी) स्मृति हुई। वे मेरे अभाग्य पर दुखी हो रहे थे।

बाबाके मुखसे यह वृत्तान्त सुनकर मैं अपने अभाग्यपर पश्चात्ताप करने लगा। वास्तवमें ही श्रीगुरुचरणोंमें जैसी श्रद्धायुक्त भक्ति एवं अनुशासनकी आवश्यकता होती है, मुझमें तो उसका सर्वदा अभाव ही रहा।

****

कुछ और बातें

कभी-कभी बाबा अपने अन्तरंगजनों और श्रद्धालुओंके बीच श्रीभाईजीके सम्बन्धमें कुछ संस्मरण सुनाते थे जो उन लोगोंके हृदय-पटलपर अंकित हो जाते थे उन्हीं कुछ बातोंको यहाँ दिया जा रहा है।

(१)

(जनवरी, सन् १९३८, उपस्थिति श्रीभाईजी, बाबा एवं श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी)

भाईजी—दुजारीजी मेरे जीवनकी बातोंको नोट करते हैं। इनकी तत्परता देखकर मनमें अहंकारका भाव आता है पर मैं इसमें जरा भी सहयोग करूँ तो मुझे लज्जा आती है। मुझे मनसे इस काममें बड़ी घृणा है। इसलिये मेरी स्थितिमें आकर आप सलाह दीजिये कि मुझे क्या करना चाहिये?

बाबा—हाँ, ये मेरेसे भी बार-बार कहा करते हैं कि आप भी भाईजीसे मुझे कुछ सहयोग देनेके लिये कहिये।

भाईजी—स्वामीजी! इनके अत्यधिक आग्रहको देखकर कभी-कभी मैं अपने जीवनकी कुछ बातें बता देता हूँ। पर यह मेरे मनके तनिक भी अनुकूल नहीं है। वर्तमानमें मुझे नयी-नयी अन्तरंग लीलाओंके दर्शन होते रहते हैं, उन्हें मैं सर्वथा प्रकट नहीं कर सकता।

दुजारीजी—आपने कहा था कि श्रीसेठजीकी जीवनी लिखनेमें आप सहायता कर सकते हैं।

भाईजी—हाँ, उनकी जीवनीके नोट संग्रह करके मुझे दे दिये जायँ तो मैं लिखनेमें सहायता कर सकता हूँ—यदि उनका विरोध न हो तो।

दुजारीजी—भाईजी! जब आप लोग नहीं रहेंगे तब लोग आप दोनोंके जीवनकी घटनाओंको सुननेके लिये लालायित रहेंगे।

भाईजी—तुम्हारी इच्छा हो तो तुम कर सकते हो। अन्यथा श्रीचैतन्य महाप्रभुका जीवन ही पर्याप्त है।

बाबा—भाईजी! चैतन्य महाप्रभु भी स्वरूप दामोदर एवं रघुनाथदासको बहुत-सी बातें बताया करते थे। तब ही तो वे अपनी डायरी (कड़चों) में इतनी बातें लिख सके। जिनसे कविराज कृष्णदासने चैतन्य-चरितामृत तैयार कर दिया—जिससे आज संसारका कितना उपकार हो रहा है। मैंने दुजारीजीसे कहा

था कि तुम्हारा कार्य भी श्रीराधाकृष्णकी इच्छासे ही हो रहा है। तुमको ही श्रीराधाकृष्णने इस कार्यमें निमित्त बनाया है। इसलिये तुम्हें खूब उत्साहसे यह कार्य करना चाहिये। भाईजीके सहयोग न देनेपर भी यह कार्य बहुत अच्छा हो सकता है।

भाईजी—यह बात ठीक हो सकती है।

दुजारीजी—कभी-कभी तो मनमें आती है कि मैं इतना परिश्रम करता हूँ, पर मेरे मरनेके बाद इसे कौन पढ़ेगा?

बाबा—मैं ऐसी बात नहीं समझता। हो सकता है कभी प्रेसवाले ही इनकी खुशामद करें। भाईजी! आपके प्रति इनका बड़ा अच्छा भाव है। आप तो एकान्तमें जीवन बिताना चाहते हैं और ये आपकी परवाह न करके लोगोंको आपके पास रखनेके लिये प्रयत्न करते हैं।

भाईजी—इन्होंने बहुतोंको इस नये काममें लगाया है—गोस्वामीजी, रामसुखदासजी महाराज, च्यवनरामजी, ब्रदीप्रसादजी आचार्य, शिवकिशनजी डागा, नन्दलालजी जोशी आदि। इनकी नीयत अच्छी है।

(२)

(सन् १९४१)

एक दिन बाबा प्रवचन देने जा रहे थे तब उचित अवसर देखकर श्रीभाईजीने बाबासे कहा—आप तो आये थे किसी और कामके लिये, पर आप लग गये धर्म-प्रचार और लोक-सुधारके कार्यमें।

बाबा—मैं आपके कथनका आशय नहीं समझ पाया। आप क्या कहना चाहते हैं?

भाईजी—मैं क्या बताऊँ कि मैं आपको किस रूपमें देखना चाहता हूँ। मेरी आन्तरिक अभिलाषा है कि आपका जीवन श्रीकृष्णानुरागिणी व्रजाङ्गनाओंके दिव्य प्रेमका साकार स्वरूप बन जाय। श्रीमद्भागवतका एक श्लोक है—

या दोहनेऽवहने मथनोपलेपप्रेङ्खेङ्खनार्भरूदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः।।

(१०/४४/१५)

मैं तो चाहता हूँ कि इस श्लोकका सत्य आपके जीवनमें चरितार्थ हो उठे। आपको धर्मोपदेशक बनना है या प्रेम-सिन्धुमें निमज्जन करना है? श्रीकृष्णप्रेमसे परिपूर्ण उस दिव्य जीवनका महत्त्व कुछ अद्भुत ही है। प्रवचन देनेसे बहुतोंको लाभ होगा और आपकी प्रतिष्ठा भी बहुत होगी, परन्तु इस प्रकारकी बहिर्मुखतासे उस दिव्य जीवनकी प्राप्तिमें बहुत विलम्ब हो जायेगा।

बाबा—आप कहें तो मैं अभी मौन हो जाऊँ?

भाईजी—आज तो आप प्रवचन दे आये। लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसके बाद आप इस प्रवृत्तिसे निवृत्त हो जायँ।

(श्रीभाईजीका इतना संकेत पर्याप्त था। उस दिन बाबाका अन्तिम प्रवचन था)

(३)

बाबाने बताया कि एक बार रतनगढ़में था, इसी तरह दो बजे उठा। देखता हूँ मेरे सामने श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उन दिनों तीन सालतक भाईजीको पाइल्सकी बहुत तकलीफ रही थी। फिर अन्तमें अजमेरमें चिकित्सा करानेसे ठीक हुई। श्रीकृष्ण हँसते हुए बोले कि भाईजीको इतनी तकलीफ हुई यह तुम्हें भोगनी पड़ती। मैंने कहा—मैं समझा नहीं। तब बोले—यह तुम्हारा किया हुआ कर्म था। फिर अन्तर्धान हो गये। दिन होनेपर मैं भाईजीके पास जाकर उनसे पूछने लगा। पहले तो थोड़ी देर टालमटोल करते रहे। फिर मैंने थोड़ा-जोरसे कहा—मुझे उस सूत्रसे पता लगा है जो सर्वोपरि है। तब हँसने लगे, बोले—मैं और आप दो थोड़े ही हैं। अभी तो आप मुझे 'कल्याण' का काम करने दीजिये बादमें किसी दिन बात करेंगे।

(४)

सन् १९५६ की शरद्पूर्णिमासे बाबाने काष्ठ मौन लेनेका निर्णय किया। मौन लेनेके पूर्व अपने अन्तिम प्रवचनमें बाबाने कहा—'श्रीपोद्दारजी महराज यदि गुलाबका एक सुन्दर पौधा हैं तो मैं उसकी एक शाखापर एक छोटा-सा गुलाब फूल हूँ। मुझसे भी अधिक सुन्दर, श्रेष्ठ एक नहीं अनेकानेक पाटल पुष्प खिला देनेकी क्षमता इस पौधेमें है।'

(५)

एक बार पूज्य बाबाने बतलाया था कि एक बार रतनगढ़में मैंने अपने कमरेमें देखा कि श्रीपोद्दार महाराज कहीं सहजभावसे चले जा रहे थे और उनके इस प्राकृत शरीरकी आरती देवांगनायें कर रही थीं। इसके कुछ दिनोंके बाद

मुझे अनुभव हुआ गोरखपुरकी गीतावाटिकामें कि जिस कमरेमें सबसे पहले राधाष्टमी मनायी गयी थी उसमें श्रीपोद्दार महराज लेटे हुए हैं। वे उन दिनों बीमार थे। उनके पास अनेकानेक देवांगनायें जा रही हैं और प्रणाम करके वापस आ रही हैं। मैं इस दृश्यको देखता ही रह गया।

(६)

बाबाने कहा है—श्रीभाईजीके शरीरमें मुझे चिन्मयताका दर्शन होता है—यह बात मैंने किसीके संज्ञानमें नहीं लायी थी। उनके जीवनके अन्तिम वर्षोंमें, उनके महाप्रयाणसे कई वर्ष पहलेसे ही मुझे उनका स्थूल वपु चिन्मय लगता था। मुझे तो बस यही दृष्टिगोचर होता था कि वहाँ एकमात्र प्रियतम श्रीकृष्ण हैं। लोगोंके देखनेमें उनकी स्थूल काया भले पाञ्चभौतिक लगती हो परन्तु मुझे उनके पार्थिव शरीरमें चिन्मयताका सतत दर्शन होता था। उनके स्थूल कलेवरकी श्यामलताके पीछे विराज रहे हैं मेरे सुन्दर श्याम ही। यह मेरे मनकी आस्था और अनुभूति है।

(७)

श्रीभाईजीके अद्भुत, अद्वितीय लोकोत्तर स्थितिकी महिमाका बखान करते हुए बाबाने अपने भावभरे उद्‌गारमें कहा है—(१) धार्मिक ग्लानि और ह्रासको दूर करनेके लिये धर्म-प्रचारका जो कार्य आदिशंकराचार्य-रामानुजाचार्य जैसे आचार्यों द्वारा हुआ, (२) जन-जनके आचार-विचार-व्यवहारको नियंत्रित-सुसंस्कृत करनेके लिये समाज-जीवन सम्बन्धी प्रश्नोंपर व्यवस्था देनेका जो कार्य मनु-याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकारों द्वारा हुआ, (३) हृदयकी कोमल भक्ति भावनाओंके तरंगित हो उठनेपर सरस भक्तिकाव्यकी रचनाका जो कार्य तुलसीदास-सूरदास जैसे भक्त कवियों द्वारा हुआ और, (४) श्रीराधामाधवके लीलासिन्धुमें नित्य-निरन्तर निमग्न रहनेके आदर्शकी प्रतिष्ठाका जो कार्य मीराबाई और चैतन्य महाप्रभु जैसे रसिकजनों द्वारा हुआ, इन चारों काव्य-धाराओंके अद्‌भुत संगमका पावन दर्शन श्रीपोद्दार महाराजके विशाल व्यक्तित्वमें होता है।

(८)

एक बार रतनगढ़में श्रीभाईजी भागवतकी कथा सुना रहे थे। वे कथाके बीचमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुके जीवनकी और उनके महान परिकरोंकी बातें भी सुनाते थे। एक दिन कथाके अन्तमें बाबाने पूज्य भाईजीसे कहा—भाईजी! क्या

चैतन्य-लीला फिरसे नहीं हो सकती है? प्रेमावतार श्रीचैतन्य महाप्रभुकी लीला बड़ी अनोखी है। आप महाप्रभुकी अलौकिक लीलाकी आवृत्ति फिरसे करवाइये। इसपर श्रीभाईजीने तटस्थकी भाँति शांतभावसे उत्तर दिया—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी लीलाकी आवृत्ति तब हो सकती है जब लीलाके लिये उपयुक्त पात्र हो। आप ही बताइये, कहाँ हैं अद्वैताचार्य? कहाँ हैं श्रीनित्यानन्द? और कहाँ हैं उनके अन्य महान् परिकर? उपयुक्त देश, काल और पात्र पाकर ही तो लीला अवतरित होती है। आज वैसा देश, काल तो है नहीं और न वैसे पात्र है। इसपर बाबाने अपने मनोभावोंको व्यक्त करते हुए कहा—कठिन अवश्य है परन्तु आप चाहें तो श्रीचैतन्य लीलाकी पुनरावृत्ति हो सकती है और उस लीलाका दर्शन जीवनमें कर सकते हैं। इतना सुनकर श्रीभाईजी मुस्कुराये परन्तु मौन रह गये।

(९)

बाबा कहते थे—मुझे पूज्य पोद्दार महाराजकी सन्निधि मात्रसे बहुत ही अलभ्य वस्तुएँ मिल जाती हैं। संसार भले ही श्रीपोद्दार महाराजको थुल-थुल शरीरवाला मारवाड़ी बनिया देखता हो, मेरे लिये तो वे साक्षात् श्रीकृष्ण ही हैं। वरं यह कहना अनुचित नहीं होगा कि वे श्रीकृष्णका गोपनीय से गोपनीय तत्त्व-रहस्य प्रकट करनेवाले साक्षात् कृपामूर्ति ही हैं।

(१०)

बाबा कहते थे कि मेरा तो श्रीपोद्दार महाराजकी कृपाने ही सब काम बना दिया। कृपा सागर पोद्दार महराजकी कृपासे मुझे अनायास ही महाभावसागरकी गहरायी पर डाल दिया गया। उन्होंने मुझे अपने लक्ष्यपर बिना श्रमके इतनी जल्दी पहुँचा दिया मानो हैलीकाफ्टर या हवाई जहाजसे यात्रा करायी गयी हो। मुझे सन्त कृपासे ऊँची-से-ऊँची वस्तु अनायास सुलभ हो गयी। मैंने कोई परिश्रम और प्रयास किया ही नहीं।

निवेदन

इस पुस्तककी सामग्री 'श्रीभाईजीके जीवनवृत्तका संग्रह करना' अपने जीवनका उद्देश्य रखनेवाले अनन्य प्रेमी गोलोकवासी श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीके संग्रह और गोलोकवासी साधु कृष्णप्रेमजी विरचित 'महाभाव दिनमणि श्रीराधाबाबा' से साभार संकलित किया गया है। साधुकृष्णप्रेमजी द्वारा श्रीराधाबाबाको 'पू० गुरुदेव' सम्बोधित किया गया है। प्रस्तुत पुस्तकमें जनसामान्यकी दृष्टिसे पू० गुरुदेवके स्थानपर 'बाबा' दिया गया है।

परम पूज्य श्रीभाईजीकी पावन समाधिके सम्बन्धमें पूज्य बाबाकी प्रत्यक्ष अनुभूति

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण

व्रजेन्द्रनन्दन प्रभु श्रीपोद्दारजी महाराजके पाञ्चभौतिक कलेवरकी भस्मीभूत कणावलियाँ चिताकी राख नहीं, अपितु प्रत्यक्ष चित् वृन्दावन है। इसके अणु–अणु, परमाणु–परमाणुमें झलझल कर रही है। व्रजकुलचन्द्रमा एवं भानुनृपदुहिताकी नील–पीत–द्युति।

मेरा अखण्ड विश्वास है कि कदाचित् अचिन्त्य–सौभाग्यवश कोई अधिकारी दर्शन प्राप्त कर लेगा इन चिन्मय अवशेषोंके तो उसे अविलम्ब प्राप्ति हो जायेगी। व्रजभावकी! अपनी–अपनी भावभूमिके अनुसार ही उपलब्धिकी गरिमा रहेगी अवश्य—परन्तु इसके अमोघ वस्तुगुणके समक्ष रीता तो कोई रह ही नहीं सकता। योग्य–अयोग्यका पार्थक्य नहीं है बीज वपनकी इस अहैतुकी कृपामें!! अतः भूमिके न रहनेपर भावमसृण–भूमिका निर्माण हो जायेगा, भावभूमि होनेपर अंकुर प्रस्फुटित हो उठेंगे, अंकुर होंगे तो द्रुमका रूप ग्रहण करने लगेंगे, द्रुम क्रमशः पल्लवित–पुष्पित हो जायेंगे और अन्तमें उन्मीलित होकर ही रहेगा—नित्य चिन्मय भाव साम्राज्यका द्वार!!!

मैं सत्य–सत्य कह रहा हूँ—इन भस्म–कणोंके दर्शनमात्रसे, इन समाधिकी सच्चिन्मयी सत्ताके भावबहुल क्षेत्रमें प्रवेशमात्रसे; कालके प्रवाहमें—एक दिन उस श्यामल अनुरक्तिमें पर्यवसान परम सुनिश्चित सत्य है।

राधा राधा राधा राधा राधा

रस–सिद्ध संत श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार की जीवन झाँकी

भगवान्‌के 'विशेष कार्य' हेतु १७ सितम्बर १८९२ ई०, दिन शनिवारको आपका जन्म शिलांगमें हुआ। कुल देवता श्रीहनुमानजीकी कृपासे जन्म होनेके कारण आपका नाम 'हनुमानप्रसाद' पड़ा। युवावस्थामें देश-सेवा—समाजसेवाकी प्रवृत्ति प्रबल होनेके कारण स्वदेशी आन्दोलनमें शुद्ध खादी प्रयोगका व्रत ले लिया। आपके क्रान्तिकारी गतिविधियोंमें सक्रिय भाग लेनेके कारण शिमलापालमें २१ माहतक नजरबन्द किया गया। बंगालके क्रान्तिकारियों अरविन्द घोष आदिसे आपका निकट सम्पर्क हुआ। १९१८ में आप बम्बई आ गये। वहाँ लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, महात्मा गाँधी, पं०मदनमोहन मालवीय, संगीताचार्य विष्णु दिगम्बरजीसे घनिष्ठ सम्पर्क हुआ। सभीके द्वारा प्रेमपूर्वक आपको भाई सम्बोधन करनेके कारण आपका उपनाम 'भाईजी' पड़ गया।

श्रीभाईजीमें अपने यश प्रचारका लेश भी नहीं था। इसी कारण उन्होंने 'रायबहादुर', 'सर' एवं 'भारतरत्न' जैसी राजकीय उपाधियोंके प्रस्तावको नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा उनकी अमूल्य हिन्दी-सेवाके सम्मानार्थ प्रदत्त 'साहित्य—वाचस्पति' की उपाधिका अपने नामके साथ कभी प्रयोग नहीं किये। हालाँकि भाईजीकी शिक्षा पारिवारिक, पारम्परिक ही रही लेकिन यह चमत्कार है कि कई भाषाओं पर उनका असाधारण अधिकार था। सुप्रसिद्ध हिन्दी मासिक पत्रिका 'कल्याण' के १९२६ ई०में प्रकाशन प्रारम्भ होनेपर उसके सम्पादनका गुरुतर दायित्व आपने सफलतापूर्वक निर्वाह किया और अपने भगीरथ प्रयत्नोंसे उसे शिखरपर पहुँचाया। उनके द्वारा सम्पादित 'कल्याण'के ४४ विशेषांक अपने विषयके विश्वकोष हैं। हमारे आर्ष ग्रन्थोंको विपुल मात्रामें प्रकाशित करके विश्वके कोने–कोनेमें पहुँचा दिये जिससे वे सुदीर्घ कालके लिये सुरक्षित हो गये। हिन्दी और सनातन धर्मकी उनकी सेवा युगोंतक लोगोंके लिये प्रेरणाश्रोत रहेगी। उनके द्वारा हिन्दी साहित्यको मौलिक शब्दोंका नया भण्डार मिला। उनकी गद्य–पद्यात्मक रचनायें अपने विषयकी मीलकी पत्थर हैं। श्रीभाईजी द्वारा विरचित १०० से अधिक पुस्तकें अबतक प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें उनके काव्य संग्रह 'पद-रत्नाकर' के अतिरिक्त 'राधा-माधव-चिन्तन', 'प्रेमदर्शन', 'भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर बाललीलायें', 'वेणुगीत', 'रासपञ्चाध्यायी' 'रस और आनन्द' तथा 'प्रेमका स्वरूप' प्रमुख हैं। उनकी कुछ रचनाओंका विश्वकी कई भाषाओंमें अनुवाद हुआ है।

भगवन्नामनिष्ठाके फलस्वरूप वनवेशधारी भगवान् सीतारामके दर्शन हुए तदनन्तर पारसी प्रेतसे साक्षात् वार्तालापके परवर्तीकालमें अनेक दिव्यलोकोंसे सम्पर्क स्थापित किये।

भगवद्दर्शनकी प्रबलोत्कण्ठा होनेपर १९२७ ई० में भगवान् विष्णुने दर्शन देकर

उन्हें प्रवृत्तिमार्गमें रहते हुये भगवद्भक्ति तथा भगवन्नाम प्रचारका आदेश दिया। क्रमश: दिव्यलोकोंसे सम्पर्कके साथ ही अलक्षित रहकर विश्वभरके आध्यात्मिक गतिविधियोंके नियामक एवं संचालक दिव्य संत-मण्डलमें अन्तर्निवेश हो गया। कृपाशक्तिपर पूर्णतया निर्भर भक्तपर रीझकर भगवान्ने समय-समयपर उन्हें श्रीराम, शिव, गीतावक्ता श्रीकृष्ण, श्रीव्रजराजकुमार एवं श्रीराधाकृष्ण दिव्य युगलरूपमें दर्शन देकर तथा अपने स्वरूप तत्त्वका बोध कराकर कृतार्थ किया। १९३६ ई० में गीतावाटिकामें प्रेमभक्तिके आचार्य देवर्षि नारद और महर्षि अंगिरासे साक्षात्कार हुआ और उनसे प्रेमोपदेशकी प्राप्ति हुई। अपने ईष्ट आराध्य रसराज श्रीकृष्ण और महाभावरूपा श्रीराधा किशोरीकी भाव साधना, स्वरूप चिंतनसे उनकी एकाकार वृत्ति इष्टके साथ प्रगाढ़ होती गयी और वे रसराजके रस-सिन्धुमें निमग्न रहने लगे। भागवती स्थितिमें स्थित होनेसे उनके स्थूल कलेवरमें श्रीराधाकृष्ण युगल नित्य अवस्थित रहकर उनकी सम्पूर्ण चेष्टाओंका नियन्त्रण-संचालन करने लगे। सनकादि ऋषियोंसे उनके वार्तालाप अब छिपी बात नहीं है।

भगवत्प्रेरणासे भाईजीने अपने जीवनके बाह्यरूपको अत्यन्त साधारण रखते हुये इस स्थितिमें सबके बीच ७८ वर्ष रहे। कुछ श्रद्धालु प्रेमीजनोंको छोड़कर उनके वास्तविक स्वरूपकी कोई कल्पना भी नहीं कर सका। जो उनके निकट आये वे अपने भावानुसार इसकी अनुभूति करते रहे। किसीने उन्हें विद्वान् देखा, किसीने सेवा-परायण, किसीने आत्मीय स्नेहदाता, किसीने सुयोग्य सम्पादक, किसीने सच्चा सन्त, किसीने उच्चकोटिका व्रजप्रेमी और किसीको राधा हृदयकी झाँकी उनके अन्दर मिली। किसी संतकी वास्तविक स्थितिका अनुमान लगाना बड़ा कठिन है तथापि भाईजी निश्चित रूपसे उस कोटिके सन्त थे जिनके लिये नारदजीने कहा है—'**तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्**'—भगवान् और उनके भक्तोंमें भेदका अभाव होता है। श्रीभाईजीकी प्रमुख शिक्षायें हैं—१-सबमें भगवान्को देखना (२) भगवत्कृपापर अटूट विश्वास करना और (३)भगवन्नामका अनन्य आश्रय ग्रहण करना।

हमारी भावी पीढ़ियोंको यह विश्वास करनेमें कठिनता होगी कि बीसवीं सदीके आस्थाहीन युगमें जो कार्य कई संस्थायें मिलकर नहीं कर सकतीं वह कल्पनातीत कार्य एक भाईजीसे कैसे सम्भव हुआ। राधाष्टमी महोत्सवका प्रवर्तन और रसाद्वैत—राधाकृष्णके प्रति नयी दिशा एवं मौलिक चिन्तन इस युगको उनकी महान देन है। उनके द्वारा कितने लोग कल्याण पथपर अग्रसर हुये, वे परमधामके अधिकारी बने इसकी गणना सम्भव नहीं है। महाभाव—रसराजके लीलासिन्धुमें सर्वदा लीन रहते हुये २२ मार्च १९७१ को इस धराधामसे अपनी लीलाका संवरण कर लिये।

'वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्'

आलोक : विस्तृत जानकारीके लिये गीतावाटिका प्रकाशन, गोरखपुरसे प्रकाशित ***'श्रीभाईजी—एक अलौकिक विभूति'*** पुस्तक अवश्य पढ़े।

॥ श्रीहरि:॥

गीतावाटिका प्रकाशन

पो०-गीतावाटिका, गोरखपुर-२७३००६

फोन : (०५५१) २२८४७४२, २२८२१८२

E-mail : rasendu@hotmail.com

हमारे प्रकाशन

क्र.	पुस्तक	लेखक/संपादक	मूल्य
1.	श्रीभाईजी—एक अलौकिक विभूति (पू.श्रीभाईजी एवं पू. श्रीसेठजीकी संक्षिप्त जीवनी)	संयोजक—श्रीष्यामसुन्दरजी दुजारी	90.00
2.	भाईजी चरितामृत (पू0 श्रीभाईजीके शब्दोंमें उनके जीवन प्रसंग)	संयोजक—श्रीष्यामसुन्दरजी दुजारी	50.00
3.	भाईजी पावन स्मरण	सम्पादक महामहोपाध्याय श्रीगोपीनाथजी कविराज	300.00
4.	सरस पत्र	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
5.	व्रजभावकी उपासना	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	25.00
6.	परमार्थकी पगडंडियाँ	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
7.	सत्संगवाटिकाके बिखरे सुमन	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
8.	वेणुगीत	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	35.00
9.	समाज किस ओर जा रहा है	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
10.	प्रभुको आत्मसमर्पण	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
11.	भगवत्कृपा	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	5.00
12.	श्रीराधाष्टमी जन्म–व्रत महोत्सव	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	5.00
13.	शान्तिकी सरिता	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	20.00
14.	रासपं०चाध्यायी	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	35.00
15.	पारमार्थिक और लौकिक सफलताके सरल उपाय	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	25.00
16.	क्या, क्यों और कैसे?	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
17.	साधकोंके पत्र	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
18.	भगवन्नाम और प्रार्थनाके चमत्कार	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
19.	मेरी अतुल सम्पत्ति	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	10.00
20.	श्रीषिव–चिन्तन	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	25.00
21.	अन्तरंग वार्तालाप	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
22.	भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर बाललीलायें	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	250.00

23.	यज्ञपत्नियों पर कृपा	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
24.	रस और आनन्द	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
25.	प्रेमका स्वरूप	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
26.	रोगोंके सरल उपचार	सम्पादक–भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	35.00
27.	भगवत्कृपाके अनुभव	सम्पादक–भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
28.	योग एवं भक्ति	सम्पादक–भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
29.	भारतीय नारी	सम्पादक–भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
30.	भगवत्कृपाके चमत्कार	सम्पादक–भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
31.	भारतीय संत	सम्पादक–भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
32.	मेरे प्रियतम	श्रीराधाबाबा	30.00
33.	आस्तिकताकी आधार–शिलाएँ	श्रीराधा बाबा	35.00
34.	महाभागा व्रजदेवियाँ	श्रीराधाबाबा	30.00
35.	केलि–कु०ज	श्रीराधाबाबा	70.00
36.	परमार्थके सरगम	श्रीराधाबाबा	30.00
37.	पद–रत्नाकर–एक अध्ययन	श्रीष्यामसुन्दरजी दुजारी	30.00
38.	दिव्य हस्तलिखित संकेत	संयोजक–श्रीष्यामसुन्दरजी दुजारी	50.00
39.	श्रीराधा–गुण–गान		30.00
40.	श्रीकृष्णजन्माष्टमी–महोत्सव	संकलनकर्ता–श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी	10.00
41.	जन कल्याणके लिये	(पद–रत्नाकरके पदोंका भावार्थ)	60.00

भाईजी पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके भावपूर्ण, प्रवचनों एवं पदोंकी सी०डी० सूची

श्रीमद्भागवत–कथा

1 से 44 श्रीकृष्ण बाललीला कैसेट सेट

1 से 11 वेणुगीत प्रवचन माला कैसेट सेट

1 से 10 रासपंचाध्यायी प्रवचनमाला

अन्य प्रवचन

1. भागवत्कृपा का आश्रय लीजिये
2. प्रेमका सच्चा स्वरूप
3. शरणगति और प्रेमके भाव
4. गोपीप्रेमका स्वरूप
5. भगवान्की गोद सबके लिये सुलभ
6. साद्दकका लक्ष्य और मार्ग
7. भगवत्कृपाकी अनूठी व्याख्या
8. प्रेमके भावोंकी अनोखी व्याख्या
9. आँखोंमें श्याम समा जायें
10. वैराग्य और प्रेमका रिश्ता
11. अपनी साद्दनाके अनुकूल संग करें
12. भगवान् हमारी सारी जिम्मेदारी लेनेको तैयार
13. शान्ति कैसे मिले ?
14. भगवत् अनुराग और विषयानुराग
15. रस और आनन्दमें चूर हो जावें
16. हमारी चिन्ता कैसे दूर हो ?
17. भगवान्पर विश्वास कर, उनके हो जावें
18. व्यवहारकी बातें
19. प्रेमी बननेके अमोघ साद्दन
20. भगवन्नामकी अनुपम महिमा
21. शरणगति–सरल साद्दन
22. साद्दनकी उपयोगी बातें
23. असली प्रेम त्यागमें ही है सुंदर व्याख्या
24. साद्दनाके विघ्नः भय–प्रलोभन
25. अन्तरंगता का स्वरूप और साद्दना
26. चेतावनी–बहुत गई थोड़ी रही
27. भोगोंसे मन हटाकर भगवान्में लगाओ
28. हमारा काम तुरंत कैसे बनें
29. भक्तिके पाँच रस सुंदर व्याख्या
30. भगवान्की प्रेम परवशता
31. भगवत्प्राप्तिका सुख
32. दिन भर कार्य भगवान्की सेवा–भावसे करें
33. इन्द्रियोंका संयम एवं परहित
34. मानव जीवनके लक्ष्यकी प्राप्ति
36. श्रीकृष्ण–जनमाष्टमी प्रवचन सं0 2017 एवं श्रीगोस्वामीजी द्वारा पदगायन
37. जन्माष्टमीके दूसरे दिनका प्रवचन 2017
38. सारे कर्मोसे भगवान् की पूजा करें
41. अपने सदाचरणों द्वारा दूसरोंमें सद–भावों का उन्नयन
42. श्रीकृष्णके वन भोजन लीलाका ध्यान
43. श्रीराद्दाष्टमी प्रवचन सुबह सं0 2017
44. श्रीराद्दाष्टमी प्रवचन शाम सं0 2017
45. भगवान् हमारे अपने हैं
46ए. असली प्रेमकी पहचान
46बी. निरन्तर भगवत्स्मृति कैसे हो सकती है
47ए. भजन और भगवान्की आवश्यकता
47बी. अच्छे व्यवहारकी महत्ता
48. शरद् पूर्णिमापर प्रवचन
49. शरद् पूर्णिमापर पू0 राद्दाबाबा का संदेश
50. प्रेम मार्गमें बढ़नेके सहायक सूत्र
51. सुदामाकी प्रेम कथा एवं अपनेमें दैन्यता
52. कल ही निष्पाप कैसे हो
53. शान्ति मिलने के उपाय
54. श्रीराद्दाष्टमीका षष्टी महोत्सव
55. श्रीराद्दाष्टमीके दिन का प्रवचन
56. श्रीराद्दाष्टमीके बाद का प्रवचन
57. भगवद्विश्वासकी चमत्कारी घटनाएँ
58. साद्दनाको साध्यसे अद्दिक महत्त्व दें
59. जीवनकी सच्ची सफलता किसमें है
60. बुराईसे बचने के उपाय
61. होहि राम को....तजि कुसमाज सुंदर व्याख्या
62. वास्तविक स्मरण कैसे करें
63. जीवनका सदुपयोग कैसे करें
64. पहले अपनेको देखें
65. अपनेमें सद्गुणोंको भरनेके उपाय
66. प्रेमका अनुभव कैसे हो सकता है
67. सिनेमा देखनेसे और सदाचारसे पतन
68. भगवान्को क्यों मानना चाहिये और उनमें श्रद्धासे लाभ
69. भगवान्को प्रसन्न करनेके उपाय
70. सुखी बननेके सूत्र
71. आगेकी सुन्दर तैयारी, अभीसे कर लें
72. भगवान्का हो जाने पर जिम्मेवारी उनकी
73. चेतावनी एवं सकाम भक्ति
74. राग–द्वेषसे बचनेके उपाय
75. अच्छे आचरण कैसे बनें
76. सर्वत्र भगवान् दर्शनसे सुंदर व्यवहार होगा
77. कालिया दमन लीला सुंदर प्रसंग
78–82. भरत प्रेम (मानस) (कुल 5 कैसेट में) सुंदर व्याख्या
83. भगवत्कृपासे मानव जीवनकी सफलता
84. अभिमानी अद्दिक फँसता है
85. भगवान्में मन कैसे लगे ?
86. पाप होने कैसे बन्द हों
87. बुद्धिसे ठीक–ठीक निर्णय करें
88. भगवत स्मरणका साद्दन
89. निर्गुण निराकार, ब्रह्मत्व और उसकी प्राप्तिका साधन
90. गोपी–प्रेमकी दिव्यता
91. असली द्दनका संग्रह करिये
92. सुख दुःखादि द्वन्द्वोंमें माया या लीला देखें
93. सर्वत्र भगवद्दर्शनका साद्दन
94. मनको वशमें करनेके उपाय
95. मन भगवान्में केन्द्रित कैसे हो
96. अपने मार्गपर चलते रहें, कहीं अटकें नहीं
97. भगवान् चाहसे मिल सकते हैं
98. अन्तर्मुखी वृत्तिका स्वरूप और भेद
99. अपनी बुद्धिका पूर्ण सदुपयोग करें
100. हमारे दोषोंको हटानेका सरल उपाय
101. भगवान्के हो जायें
102. लालसा तीव्र होनेसे ठीक मार्ग मिल जायगा

पू0 भाईजी विरचित 'पद–रत्नाकर' से चुने हुए पद

301. प0 पू0 भाईजी द्वारा गाये हुए पद
302. मारवाड़ी बोलीके पद (नाथ मैं थारो जी थारो आदि)
303. होली लीलाके सरस पद
304. श्रीराद्या जन्म महोत्सवके सरस पद
305. (षोडश गीत) राद्या–कृष्णके समर्पणके पद (रासद्यारी पं0 श्रीरामस्वरूपजी द्वारा)
306–306ए ब्रजरसके सरस पद (द्वारा)
307. भ्रमरगीतके सरस पद
308–311. भावपूर्ण पद (पू0 श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी द्वारा)
312. चुने हुए भावपूर्ण (श्रीघनश्यामजी ठाकुर वृन्दावनवालों द्वारा)
313. सरस पद (श्रीघनश्यामजी द्वारा)
314. सरस पद श्रीहरिवल्लभजी गोवर्द्दन वालों द्वारा
315. पू0श्रीगोस्वामीजी द्वारा जयगान राद्याष्टमीपर
316. रास–पंचाध्यायीका मूल पाठ पू0 गोस्वामीजी द्वारा
317–318. गायनाचार्य 'पं0 श्रीजसराजजी' द्वारा चुने हुए मद्दुर पद
319–323. चुने हुए सुमद्दुर पद एवं कीर्तन–नील मणि राठी द्वारा
324. चुने हुए मद्दुर पद (पं0 श्रीसतीशजी शास्त्री)
325. कीर्तन हरे राम हरे राम (पू0 श्रीभाईजी द्वारा)
326. कीर्तन जय राधे जय राधा (पू0 श्रीभाईजी द्वारा)

नोट : पदों व प्रवचनों से सम्बन्धित कैसेट एवं सी0डी0 भी उपलब्ध है।

हमारे प्रकाषन एवं कैसेट प्राप्तिके अन्य स्थान

गोरखपुर :–श्रीहरिकृष्ण दुजारी, पो0.–गीतावाटिका, गोरखपुर, फोन–2284742

कलकत्ता :–श्रीसुषीलकुमार मूँधड़ा, 8,इण्डिया एक्सचेंज प्लेस, (8 वाँ तल्ला)
फोन0 24640600, 24662641
2–श्रीकमलकुमार अग्रवाल, 42, विवेकानन्द रोड, कोलकाता–7,
फोन–2272807,

वाराणसी :––श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार स्मृति सेवा ट्रस्ट, दुर्गाकुण्ड रोड

दिल्ली :–– श्रीमोहनलाल दुजारी 504, स्काईलार्क, 60 नेहरू प्लेस, दिल्ली–19
फोन–26438905, 26465284

गाजियाबाद :––श्रीषिवकुमार दुजारी के0आई0 155, कविनगर, गाजियाबाद–2
फो0–(0120) 2703113

वृन्दावन :––खण्डेलवाल एण्ड सन्स, अठखम्भा बाजार, वृन्दावन
फोन : (0565) 2443101 (आ), 2442100 (नि0)

स्वर्गाश्रम (ऋषिकेष):––श्रीविष्णु पुस्तक भण्डार

मथुरा– श्रीकृष्ण जन्मभूमि सेवा संस्थान, फोन–2423714

जयपुर– श्रीहरिः पुस्तक प्रचार केन्द्र, बुलियन बिल्डिंग, हल्दियोंका रास्ता,
जौहरी बाजार, जयपुर–302003, फोन– 2570602